२

आचार्य रजनीश

गीता दर्शन

गीता दर्शन

पुष्प–२

आचार्य रजनीश

संकलना–आमुख : राधेश्याम शर्मा

''गीता दर्शन'' ग्रन्थमाला पुष्प-२

प्रकाशक : जयन्तीभाई ठाकर, जीवन जागृति केन्द्र, खाडिया, चार रास्ता अहमदाबाद.

प्रथम संस्करण, मार्च, १९७१

© कोपीराइट, जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई.

मुद्रक : श्री रामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

आवरण : रजनी व्यास आवरण मुद्रण : दीपक प्रिन्टरी, अहमदाबाद-१

प्रतियाँ : २००० मूल्य : रु. ४-००

आयोजनादान : स्टेन्डर्ड मटिरियल्स कंपनी, कपासिया बाजार, अहमदाबाद-२

आमुख * राधेश्याम शर्मा

निषेध के नहीं नृत्य के....!
आचार्य रजनीशजी

" Were Art to redeem man, it could do so only by saving him from the seriousness of life and restoring him to an unexpected boyishness"

—**Ortega y Gasset**

गीता में श्री कृष्ण कहते हैं कि धर्मग्लानि होती है तब मैं आता हूँ-इस कथन का हार्द आधुनिक काल में, भारत के संदर्भ सहित, क्या हो सकता है ?

'भारतका धर्म, जीवन-निषेधक (life-negative) है' ऐसी एकपक्षी कड़ी आलोचना सुन कर अगर कोई एक हिम्मतवर विचारक भागा न हो और जाग कर अपने 'प्रिय आत्मनों' के जगाने के लिये सहज प्रवृत्त हुआ हो तो वो केवल आचार्य रजनीश है ।

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' जैसे वचनों के स्थूलतम और प्राकृत अनुसरणों में त्याग की वेदी पर आनंद रूपेण धर्म की आहुति जब चढ़ाई जाने लगी तब जीवन मृतप्राय होता चला और धर्म के अभिनव संस्करण की अपेक्षा बढ़ती गयी ।[१]

जो किसी को शिक्षित करने की चेष्टा में ही न पड़े, 'गुरुडम' की झंझट से अपना पल्ला बखूबी छुड़ाते ही रहे वह ही उत्तम शिक्षक सिद्ध होगा । ऐसे शिक्षको में

---

१. The consciousness strong enough to endure full life would be no longer Appolonian but Dionysian consciousness which does not observe the limit but overflows consciousness which does not negate any more.

—**Norman O. Brown**

इसी संदर्भ में ब्राउन का कथन है कि तर्कपूत नैयायिकी चेतना– dialectical consciousness-का अब अगला कदम एपोलो की तरफ नहीं इतना डायोनिसस की दिशा में उठेगा, वह महत्त्वपूर्ण है ।

(जे० कृष्णमूर्ति भी इसी वर्ग में समाविष्ट किये जा सकते हैं।) आचार्यजी का स्थान सुनिश्चित है।

वैसे तो रजनीश उन-गिनेचुनें विवादोत्तेजक पुरुषों में हैं जिस पर बेहद व्यक्तिवादी झुकाव (individualistic slant) का इलजाम लगाया गया है।

जब लोकहित की आड़ लिये समूहवाद (collectivism) व्यक्ति के आंतर जीवन की श्री और ऊर्जा को धो डालने को आमादा हो जाये तब चेहेरा-शून्य (faceless) लोगों की भीड़ खड़ी हो जाती है। फ्रान्झ काफका का पैरबल तब सोलह आना सच होती हुई मालूम पड़ती है जिस में भीड़ की अन्दर घिरी-फंसी एक व्यक्ति के प्राण खड़ें खड़ें ही बिदा हो जाते हैं और उसका मृतदेह भीड़ में चलती एक जीवंत व्यक्ति के कंधों पर पड़ते वह चौंक पड़ता है कि मैं कहीं खुद तो मर नहीं गया !

जिंदगी जब खुद ही अपना गला घोंटने पर तुली हो, व्यक्ति की चेतना निष्प्रभ और आत्महनन के उपाय में लगी होती है तब चिंतातुरता व अनिर्णय, भयग्रसता व विषादपूर्णता के लक्षण चारों और फैलते नजर आते हैं।

आचार्य रजनीश, एवं उनकी दिशा के मुक्त विचारक वुंद में समुंद जताने की कोशिश करते हैं। वे निजी प्रतीति के बल पर कह सकतें है कि तुम क़तरा हो भले, तुम सागर को स्वयं में समाये हुए एक अनूठी संभावना (potentiality) हो। उनको कोइ अगम्य मूल स्रोत से पता चल गया होता है, इसलिये वे बेझिझक कहते रहते हैं: प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसा बीज हैं जो अंकुरित हो कर विराट वृक्ष होने की अद्भुत गुंजायश रखता है। उतिष्ठत, जागो, हसो, खेलो, नाचो, मन में आवे तो कूदो और यदि ताकत हो तो लगाव छलांग...

शून्य[२] में। सब तरह के प्रतिबंध, बाधायें (taboos) और निषेधों को तोड़ कर मानव को शुद्धतम मुक्ति की मंझिल दीखाने का उनका दावा है। अति-अहं (superego) का विनाश न कर उसे संमतिवाची (permissive)बनाने की उन्होंने ठानी है। देह और मन के बीच जो द्वैतात्मक तनाव (dualistic tension) और संघर्ष है उसका बृहद अद्वैत में आमूलाग्र रूपान्तरण करने का कीमिया (alchemy) रजनीश जी जैसे उन्मुक्तमना को दायें हाथ का खेल जैसा सरल लगता है।

जिसस नहीं, बुद्ध नहीं, महावीर नहीं और राम भी नहीं। रजनीशजी का सहज चुनाव हुआ तो वे पहले लाओ-त्से और कृष्ण पर हैं। बंधेबँधायें चरित्र पर उनको भरोसा नहीं। यदि है तो वे कृष्ण की समग्र जीवन लीला पर प्रसन्न है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकेगा आचार्य के बारे में। विचारवंत के सामने ये सवाल बारबार आता होगा कि जीवन की कला को धर्म कहा जाये या धर्म को कला को जीवन कहें ? दोनों बात सही कहनी पड़ेगी क्योंकि :वे दोनों परस्पर परिपूर्ति (compensate) किये बिना नहीं रह सकतें। वह धर्म ही क्या जिसमें जीवन न हो, और वह जीवन ही क्या जिसमें धर्म न हो ?

मगर आप-शायद सब साधक-पूछ सकते हैं सीधे आचार्यजी को-क्या है ये 'धर्म का' ध्यर्थ एवं संप्रत्यय (concept) ? अगर सवाल सही तरीके से पूछा गया हो तो

---

२ लाओ-त्से भी (TAO) 'ताओ' का निर्देश देने के लिये न-कुछ (Nothing) का बार बार विनयोग करता था। उपनिषद के 'नेति नेति' की भांति 'ताओं' धर्म में Wu का प्रयोग निषेधवाची अर्थ में हुआ है। और न-कुछ, शून्य वहां केवल 'निहिलिस्ट' अभिगम की खबर नहीं देता। उदाहरणार्थ—The myriad creatures in the world are born from nothing and something from nothing...
(Tao Te Ching)

तुरंत जवाब पाओगे...धर्म की विभावना कहीं हो सकती है ? हां मुँह फुलाये बैठना, उग्र व्रत-अनुष्ठान करना, उपवास पर उतर जाना या सच कहो तो किसी भी प्रकारके नियमन के ढांचे रच सत्याग्रह भी करना निश्चित ही धर्म नहीं हो सकता और सुनो... अधर्म को ढुंढने के लिये अब कहीं और खोजबीन करने के चक्कर में मत उलझना ! ये सब आत्मविस्मरण और सलामती के प्रतिष्ठत मार्गभर है। एलन वाट्स की तरह आचार्य रजनीश भी The wisdom of Insecurity अपने ढ़ंग से सीखाते हैं ।

विचारक ओर्तेगा यही बात कला के संबंध में करता है। मनुष्य को चाहिये कि अकलप्य विशुद्धतर बचपन में पुनः लाया जाय (restoring him to an unexpected boyishness).

यथार्थ ही आचार्यजी मानते हैं कि संसार को हँसते हुए धर्म की-नाचते हुए धर्मकी दूर व्यतीत में से अधुनातन काल तक किसी प्रसन्न मधुर छबी (image) ने यात्रा की हो तो वह सिर्फ श्री कृष्ण की है ।

दो अलग, आत्यंतिक ध्रुव (poles) पर्यंत समग्र का सम्पूर्ण स्वीकार (total acceptability) करने का विरल सामर्थ्य सब के सब अवतारों में कृष्ण में ही पाया जाता है । जिससको जैसे किसी ने हँसते नहीं देखा वैसे कृष्ण को-रणक्षेत्र में हो या स्वधामगमन की क्षण में शरपीडा को झेलते हुए —किसी ने उदास नहीं पाया है । इसका एक मात्र कारण है उनकी प्रत्येक स्थूल-सूक्ष्म चेष्टा प्रेमप्रपूर्ण है । प्रेमपूर्ण है इसका मतलब कलायुक्त है । कलापूर्ण है इसका राज़ खाली (empty) है, शून्य है-सर्व प्रयोजन के बाहर और उद्देशों से अनिर्ग्रस्त है। सहजस्फुरित नवनवोन्मेष की भांति पारदर्शक (transparent) है ।

याद रखें, आचार्य रजनीश श्रीकृष्ण को समानता के नहीं, स्वतंत्रता के अविचल पुरस्कर्ता मानते हैं ।

वे स्वतंत्रता के साथ जो मूल्यके महत्त्व पर जोर देते हैं, वह है: व्यक्ति, व्यक्तित्व, आत्मा, धर्म, अदृश्य और अज्ञात।

असंदिग्ध रूपसे आचार्य का कथन है कि दृश्य की पीछे अदृश्य, ज्ञात की पीछे अज्ञात और पदार्थ की पीछे खड़े परमात्मा को सर्व कोई साक्षात् कर सकता है। पदार्थ का आज मानवीय सृष्टि पर इतना आक्रमण है कि मनुष्य भी अपने आपको एक पदार्थ समझने लगा है... आत्मा--परमात्मा की तो बात तक न करें कोई सुन लेगा तो पागल में गिने जाओगे कहीं !

अपने जमाने में मेईस्टर इकहार्ट खुले आम कह सका : God is near to me than I am to myself. पोल टिलिक के अस्तित्त्ववादी चिंतन में 'बिईंग' और 'बिकमिंग' उभय का अर्थ being की विचारणा में समाविष्ट किया गया तब द्वैत टल गया या समझिये कि फासला ज्यादा से ज्यादा कम हो गया। अद्वैत में यात्रा आरंभ हो गयी ।

मगर उलझन तब पैदा हुये बिना नहीं रहती जब कि सत्य की अनुभूतिकी जगह सिर्फ खोखले शास्त्र-वचन कंठाग्र करके दुहराने का मनुज चित्त आदी होते चला जाता है । बजाय 'इसेन्स' 'फोर्म' को अधिक प्रतिष्ठा मिल रही है। सत्य शास्त्र में नहीं होता । शब्द--जो केवल सत्य के स्थूल संकेत रहे हैं वे शास्त्र में मिलते हैं ।

रजनीश कहतें हैं: Theology-धर्मशास्त्र, धर्मकी सब से बड़ी शत्रुता शास्त्रीयता से है । आंतरिक अतंत्रता से बचने के लिये जो आदमी शास्त्र या आचार्य (भले ही आ. रजनीश स्वयं क्यों न हो !) या कोइ 'ओथोरिटी' की अपेक्षा करता है उसके बारे में कृष्णमूर्ति ने स्पष्ट कहा है: But can authority ever bring about inward order ? order imposed from without must always breed disorder.

गीता पढ़ते वक्त तुरंत एक प्रश्न पैदा होता था-क्या कृष्ण खुद ऋजुचित्त अर्जुन के लिये एक प्रशस्त गणना-

मान्य वभूति–authority नहीं है ? इसका एक उत्तर रजनीश के अहमदाबाद में किये गीता–प्रवचन में मिल गया । उनके अधीन मंतव्य से कृष्ण–अर्जुन बीच घटित गीता कोई शास्त्रादेश (commandments) नहीं है लेकिन युद्धक्षेत्र में घटा हुआ मौन-संवाद (telepathic communication) है ।

रजनीशने जो नयी बात कही वह यह कि गीता जैसे आम तौर पर माना गया है वैसा कोई अध्यात्म-शास्त्र नहीं है, मगर 'मानसशास्त्र (psychology) है। वे साधिकार कह सकते है कि अब कपिल–कणाद की दुनिया नहीं रही। कृष्ण का अगर मुकाबला (encounter) है तो वह फ्रायड एडलर या जुंग के साथ है । अर्जुन की समस्या जितनी आध्यात्मिक नहीं, मानसिक है। और दृष्टि सूक्ष्म हो तो ख्याल में आ जायगा कि सर्वाधिक समस्या मानसिक होती है .. और अध्यात्म में ? अध्यात्म में तो समाधान ही समाधान ! हां, गीता अध्यात्म की और संकेत का समर्थ माध्यम है जरूर ।

श्रीकृष्ण को आचार्यजी केवल मनोविश्लेषक नहीं कहते शायद वे तो कृष्ण को 'संश्लेषक' कहते हैं जो अर्जुन को यथा समय अखंड की उपलब्धि कराने को तत्पर हैं । और हम खण्ड से 'अखंड' की तरफ उठते हैं तब तो मधुर दिक्कत में पड़ जाते हैं, क्योंकि अखंड अनुभूति असीम अखिल ब्रह्मांड (immense universe) के आलिंगन कराये बिना नहीं छोड़ती । ये अवस्था मनोविज्ञान के क्षेत्र का अतिक्रमण कर जाने वाली सिद्ध हुई है । निकोला बर्येव ने लिखा है: Mysticism is in profound contrast to every kind of closed-in individualism, isolated from cosmic life : it is in contrast to all psychologism.

डॉ. सी. जी. जुंगने श्रीरमण महर्षि के आत्म–साक्षात्कार के अनुसंधान में निम्नलिखित विधान दिया उसमें मानसशास्त्र

की मर्यादा का काफी प्रामाणिक उल्लेख मिलता है : It is a specifically oriental Realisation as expressed in Sri Raman's utterances. Psychology cannot contribute anything further to it, except the remark that it lies far beyond its scope to propose such a thing.

.... और वैसे आचार्य रजनीश के बारे में भी कुछ निश्चित 'प्रिडिक्ट' नहीं किया जा सकेगा । वे जो हैं सो हैं ! समस्त संसार के प्रति स्नेह सभर । उनकी आलोचना भी स्नेहसिक्त होती है । हां, वो पूर्वनिर्णीत उत्तर देते नहीं या पूर्वकथन की पुनरुक्ति नहीं करते हैं, इसलिए रजनीश को, वक्तव्य एवं शैली की दृष्टि से अगर 'असंगति के कवि' (Poet of inconsistency) कहा जाय तो उस पर भी उनकी 'सर्व स्वीकृति' वाली मुहर लग जायगी ।

प्राचीन काल में 'आचार्य' का पदाभिषेक उन्हीं पर किया जाता था जिन्होंने श्रीमद् भगवद् गीता, ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषादादि पर वार्तिक–comment दिया हो । विनोद में कहा जा सकता है कि रजनीशजी को आचार्य की उपाधि बहुत पहले प्राप्त हुई और बादमें हमें उनके गीता–उपनिषद पर भाष्य मिल रहें हैं । तवारीखी और निजी दृष्टि से इस विरल घटना का महत्त्व है और वह प्रसन्नताप्रेरक भी है ।

आजोल, 'विश्वनीड' के संन्यासी–संन्यासिनीयाँ व स्वामी गीत गोविन्द का एकाग्र परिश्रम, दीपक प्रिन्टरी के श्री रावत और श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस के संस्थापक स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री का सत्वर सहयोग इस ग्रन्थ को प्रकाशन का प्रभात शीघ्र दिखलाने में कामयाब रहा इसलिये मैं उन सबका अनुगृहित हूँ ।

२५, भुलाभाई पार्क, —राधेश्याम शर्मा
गीतामन्दिर रोड,
अहमदाबाद–२२
ता. ५–३–१९७१

मनन–माला

हँसता हुआ धर्म

"गीता एसा मनोविज्ञान है जो मन के पार इशारा करता है। लेकिन है मनोविज्ञान ही। अध्यात्मशास्त्र उसे मैं नहीं कहूंगा। और इस लिए नहीं कि कोई और अध्यात्मशास्त्र है–कहीं कोई शास्त्र अध्यात्म का नहीं है॥ अध्यात्मकी घोषणा ही यही है कि शास्त्रमें संभव नहीं है मेरा होना।"

–आचार्य रजनीश

गीता प्रवचन

(गीता दर्शन–१ के अनुसंधानमें)

अध्याय १-अर्जुन विषादयोग

प्रश्न : गीताको अध्यात्मशास्त्र कहा जाता है। आपने उसे मनोविज्ञान ही बताया। आपके ऐसे कथनका आशय क्या है ?

उत्तर : ऐसी अनुभूतिका जो अभिव्यक्त नहीं हो सकती है। इशारे किए जा सकते हैं। लेकिन इशारे अभिव्यिक्तयाँ नहीं हैं। चांद को अँगुली से बताया जा सकता है। लेकिन अँगुली चांद नहीं है। कल गीताको जब मैंने कहा मनोविज्ञान है तो मेरा अर्थ ऐसा नहीं है, जैसे कि फ्रायडका मनोविज्ञान है। फ्रायडका मनोविज्ञान मन पर समाप्त हो जाता है। उसका कोई इशारा मनके ऊपर नहीं है। मन ही इति है। उसके आगे और कोई अस्तित्व नहीं है। गीता ऐसा मनोविज्ञान है जो इशारा आगेके लिए करता है। लेकिन इशारा आगेकी स्थिति नहीं है। गीता तो मनोविज्ञान ही है। लेकिन आत्मा की तरफ, अध्यात्मकी तरफ, परम अस्तित्वकी तरफ, उस मनो-विज्ञानके इशारे गए हैं। लेकिन अध्यात्म नहीं है-मीलका पत्थर है। तीर

का निशान बना है । मंजिलकी तरफ इशारा है । लेकिन मीलका पत्थर मीलका पत्थर ही है । वो मंजिल नहीं है । कोई भी शास्त्र अध्यात्म नहीं है । हाँ ऐसे शास्त्र हैं जो अध्यात्मकी तरफ इशारे हैं । लेकिन सब इशारे मनोवैज्ञानिक हैं । इशारे अध्यात्म नहीं हैं । अध्यात्म तो वो है जो इशारे को पाके उपलब्ध होगा । और वैसे अध्यात्मकी कोई अभिव्यक्ति संभव नहीं है । आंशिक भी संभव नहीं है । उसका प्रतिफलन भी संभव नहीं है । उसके कारण हैं । संक्षिप्तमें दो तीन कारण ख़्यालमें ले लेने जरूरी हैं । एक तो जब अध्यात्मका अनुभव होता है तो कोई विचार चित्तमें नहीं होता । और जिस अनुभवमें विचार मौजूद न हो उस अनुभवको विचार प्रकट कैसे करे ? विचार प्रकट कर सकता है उस अनुभवको जिसमें वो मौजूद रहा हो-गवाही रहा हो। लेकिन जिस अनुभवमें वो मौजूद ही न रहा हो उसको विचार प्रकट नहीं कर पाता । अध्यात्मका अनुभव निर्विचार अनुभव है । विचार मौजूद नहीं होता । इसलिए, विचार कोई खबर नहीं ला पाता । इसलिए तो उपनिषद कहकहके थक जाते हैं कि 'नेति-नेति' । कहते हैं- यह भी नहीं, वह भी नहीं । पूछे कि क्या है ? तो कहते हैं यह भी नहीं, वह भी नहीं । जो भी मनुष्य कह सकता है वो कुछ भी नहीं। फिर क्या है वह अनुभव जो सब कहनेके बाहर शेष रह जाता है ? बुद्ध तो कुछ ११ प्रश्नों के लिए पूछनेकी मना ही करते थे कि इनको पूछना ही मत। क्योंकि उनको तुम पूछोगे तो खतरे हैं । अगर मैं उत्तर न दूं तो कठोर मालूम पड़ूंगा तुम्हारे प्रति; और अगर उत्तर दूं तो सत्यके साथ अन्याय होगा । क्योंकि इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया जा सकता । इसलिए, पूछना ही मत । मुझे मुश्किलमें मत डालना । जिस गांवमें बुद्ध जाते, खबर कर दी जाती कि ११ सवाल कोई भी न पूछे । वे ग्यारह सवाल अध्यात्मके सवाल हैं ।

लाओ-त्सेपर जब लोगोंने जोर डाला कि वह अपने अनुभव लिख दें तो उसने कहा मुझे मुश्किलमें मत डालो । क्योंकि जो मैं लिखूँगा वह मेरा अनुभव नहीं होगा । और जो मेरा अनुभव है, जो मैं लिखना चाहता हूं उसे फिर भी लिखने का कोई उपाय नहीं । फिर भी किसी दबावमें, मित्रोंके आग्रहमें, प्रियजनों के दबावमें, नहीं माने लोग तो उसने अपनी किताब लिखी । लेकिन, किताब के पहले ही लिखा कि "जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है और सत्य वही है जो नहीं कहा जा सकता । इस शर्तको ध्यानमें रख कर मेरी किताब पढ़ना ।"

दुनियामें जिनका भी आध्यात्मिक अनुभव है उनका यह भी अनुभव है कि वह प्रकट करने जैसा नहीं है । वह प्रकट नहीं हो सकता । निरंतर फकीर उसे गूंगे का गुड़ कहते रहे हैं । ऐसा नहीं कि गूंगा नहीं जान लेता कि गुड़का स्वाद कैसा है । बिल्कुल जान लेता है । लेकिन गूंगा उस स्वादको कह नहीं पाता । आप सोचते होंगे आप कह पाते हैं तो बड़ी गलती में हैं । आप भी गुड़के स्वादको अबतक कह नहीं पाए हैं । गूंगा ही नहीं कह पाया, बोलनेवाले भी नहीं कह पाये । और अगर मैं जिद् करूं कि समझाइए, कैसा होता है स्वाद, तो ज्यादासे ज्यादा गुड़ आप मेरे हाथमें दे सकते हैं कि चखिए । इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं । लेकिन, गुड़ तो हाथमें दिया जा सकता है । अध्यात्म हाथमें भी नहीं दिया जा सकता कि चखिये । दुनियाका कोई शास्त्र आध्यात्मिक नहीं है । हाँ, दुनियामें ऐसे शास्त्र हैं जिनके इशारे अध्यात्मकी तरफ हैं । गीता भी उनमेंसे एक है । लेकिन, वे इशारे मनके भीतर हैं । मनके पार दिखाने वाले हैं । लेकिन मनके भीतर हैं और उनका विज्ञान तो मनोविज्ञान है । उनका आधार तो मनोविज्ञान है । शास्त्रकी ऊँचीसे ऊंची ऊंचाइ मनस् है । शब्दकी ऊँचीसे ऊँची संभावना मनस् है । अभिव्यक्तिकी आखिरी सीमा मनस् है । जहाँतक मन है वहां तक मन प्रकट हो सकता है । जहां मन नहीं है वहां सब अप्रकट रह जाता है ।

तो, जब मैंने गीताको मनोविज्ञान कहा तो मेरा अर्थ ये नहीं है कि वाट-सनका मनोविज्ञान जैसा मनोविज्ञान कोई behaviourism—कोई व्यव-हारवाद या पावलवका विज्ञान कोई condition-reflax—ये सारेके सारे मनोविज्ञान अपनेमें बंद हैं । और, मनके आगे किसी सत्ताको स्वीकार करनेको राजी नहीं हैं । कुछ तो मनकी भी सत्ताको स्वीकार करने को राजी नहीं हैं । वे तो कहते हैं मन सिर्फ़ शरीरका ही हिस्सा है । मन यानी मस्तिष्क । मन कहीं कुछ और नहीं है-यह हड्डी, मांस, पेशी इन सब का ही विकसित हिस्सा है । मन भी शरीर से अलग कुछ नहीं है । गीता ऐसा मनोविज्ञान नहीं है । गीता ऐसा मनोविज्ञान है जो मनके पार इशारा करता है । लेकिन है मनोविज्ञान ही । अध्यात्मशास्त्र उसे मैं नहीं कहूंगा। और इसलिए नहीं कि कोई और अध्यात्मशास्त्र है-कहीं कोई शास्त्र अध्यात्म का नहीं है । अध्यात्मकी घोषणा ही यही है कि शास्त्र में संभव नहीं है मेरा होना । शब्दमें मैं नहीं समाऊंगा । कोई सीमामें, बुद्धिकी रेखामें नहीं

मुझे बांधा जा सकता । जो सब सीमाओंको अतिक्रमण कर जाता है, और सब शब्दोंको व्यर्थ कर जाता है और सब अभिव्यक्तियों को शून्य कर जाता है, वैसी जो अनुभूति है उसका नाम अध्यात्म है ।

प्रश्न : आचार्यजी, ऐसा मनुवचन है जहाँ आततायीको मारनेके लिए उन्होंने निर्देश किया है । शास्त्राज्ञा तो है हो और अर्जुन यह जानता भी है कि दुर्योधन अभी तक आततायी है । और तब भी उनको मारने से उसका जी हिचकिचा रहा है । तो इसका कारण ?

उत्तर : एक तो मनु जो कहते हैं वह सिर्फ़ सामाजिक नीति है । Social Ethics है । मनु जो कहते हैं वह केवल सामाजिक चिन्तना है social code है । मनुका वचन अध्यात्म नहीं है । मनुका वचन तो मनस् भी नहीं है । मनोविज्ञान भी नहीं है । मनु का वचन तो सामाजिक रीति–व्यवहारकी व्यवस्था है । इस लिए, मनुको जोड़ना हो अगर, तो उसे जोड़ना पड़ेगा मार्क्स–उसे जोड़ना पड़ेगा दुर्खीम-इस तरहके लोगोंके साथ । मनुका कोई बहुत गहरा सवाल नहीं है । मनु सामाजिक व्यवस्था-पक हैं । और, समाजकी कोई भी व्यवस्था चरम नहीं है । समाजकी सभी व्यवस्थाएँ सामूहिक हैं । जो व्यक्ति भी थोड़ा चिन्तन करेगा उसका चिन्तन निरंतर समाजकी व्यवस्थाके ऊपर चला जाएगा । क्योंकि समाज की व्यवस्था अन्तिम व्यक्तिको ध्यानमें रखकर बनाई गयी होती है । जैसे कहा जाता है–योग्य शिक्षक वही है जो अपनी कक्षामें अन्तिम विद्यार्थीको ध्यानमें रखकर बोलता है । निश्चित ही योग्य शिक्षक वही है-जो कक्षामें अन्तिम विद्यार्थी को ध्यानमें रखकर बोलता है । लेकिन तब, जो कक्षामें प्रथम व्यक्ति हैं उनके लिए शिक्षक तत्काल बेकार हो जाता है । समाजकी व्यवस्थामें तो अन्तिम व्यक्तिको ध्यानमें रखा जाता है और जड़ नियम स्थापित किए जाते हैं । अर्जुन साधारण व्यक्ति नहीं है–mediocre mind नहीं है । अर्जुन चिन्तनशील है । मेधावी है । असाधारण प्रतिभाशाली है । जिंदगी उसके लिए सोच विचार बन जाती है । अब मनु कहते हैं कि जो आततायी है, उसे तो मार देनेमें कोई बुराई नहीं । विचारशीलके लिए इतना आसान नहीं है मामला । कौन आततायी है ? और आततायी हो भी, तब भी मारना

उचित है ? या नहीं उचित है ? फिर आततायी अपना है । मनुको उसका ख्याल भी नहीं है । आततायीमें मानकर चला गया है कि वह दुश्मन है । यहां आततायी अपना है । और, एक व्यक्ति नहीं है, लाखों व्यक्ति हैं । और उन लाखों से, लाखों तरहके निकट सम्बन्ध हैं । इस लिए, अर्जुनकी स्थिति बहुत भिन्न है । वह साधारण आततायीकी, हमलावरकी, और जिसके ऊपर हमला हुआ है उसकी नहीं है । वही तो वो चिन्तन कर रहा है, वही तो वह कह रहा है कि अगर इन सबको मारकर राज्यको भी पा ले तो क्या यह सौदा उचित है ? वही पूछ रहा है । इन सबको मारके राज्यको पा लेना क्या सौदा उचित है ? क्या इतनी कीमत पर राज्यको ले लेना कुछ सार्थकता रखता है वह यही पूछ रहा है ।

यह जो अर्जुनकी मनोदशा है, मनुके जो नियम हैं, उन नियमों से बहुत ऊपर चिन्तनकी है । असलमें नियम तो सदा जड़ होते हैं । जड़ नियम कामचलाउ होते हैं । और विशेष संकटकी स्थितियोंमें अर्थहीन हो जाते हैं । और अर्जुनकी संकटकी स्थिति बहुत विशिष्ट है । विशेषता तीन प्रकारकी है । एक तो यह–कि यह तय करना बहुत मुश्किल है कि आत-तायी कौन है ? सदा ही मुश्किल है । हमें बहुत आसानी लगती है-पीछे से तय करनेमें कि आततायी कौन है । अगर कौरव जीत गए होते तो आपको पता चलता कि आततायी कौन है ? क्योंकि तब कथा और ढंगसे लिखी गयी होती । क्योंकि तब कथाकार और होते । और कथाकार तो जो विजेता है उसके आसपास इकठ्ठा होता है । हारे हुओंके आसपास तो इकठ्ठा नहीं होता ।

दूसरे महायुद्ध में हिटलर हार गया । तब हम जानते हैं कि बुरा कौन था ? लेकिन अगर हिटलर जीत जाता और चर्चिल, और रूजवेल्ट और स्टेलिन हारते तो हम बिल्कुल पक्का जानते कि बुरा कोई दूसरा था । स्थितियाँ गुजर जाने पर पीछेसे जो हम सोच पाते हैं वह ठीक स्थितियोंके बीचमें इतना तय नहीं होता । आमतौरसे, इतिहास लिखनेवाला आदमी विजेताओं का इतिहास लिखता है । और आमतौरसे, इतिहास विजे-ताओं के आसपास crystallize होता है । तो आज हम जानते हैं कि कौरव आततायी थे । लेकिन ठीक युद्ध के क्षणमें कौन आततायी है । किसने बुरा किया है यह मामला इतना दो और दो चार जैसा साफ नहीं

होता। कभी साफ नहीं होता। चीन कहे चला जाता है कि हमला हिन्दुस्तान ने उसपर किया था। हिन्दुस्तान कहे चला जाता है कि चीनने हमला उसपर किया था। कभी यह तय नहीं होगा कि किसने हमला किया था। आजतक कभी तय नहीं हो पाया है कि कौन हमलावर है। हाँ जो जीत जाता है वो इतिहास लिख लेता है। हारा हुआ हमलावर तय हो जाता है। जो हार जाता है वह इतिहास नहीं लिख पाता। क्या हार जाना ही हमलावर होने का सबूत है? पीछे से तय करना सदा आसान है। क्यों कि तब रेखाएँ बन गयी होती हैं। लेकिन ठीक परिस्थिति के बीच इतना आसान नहीं है, भूलचूक सदा दोनों तरफ होती हैं। लेकिन एक तरफ़ नहीं होती। मात्राओं में फर्क हो सकते हैं। ऐसा नहीं है कि कौरव ही एकदम जिम्मेदार हैं सारे पापके लिए और पांडव बिल्कुल नहीं हैं। ऐसा नहीं है। मात्राओंके फर्क होते हैं। यह हो सकता है कौरव ज्यादा जिम्मेवार हैं। लेकिन यह भी बहुत पीछेसे जब perspective मिलता है—दूरी मिलती है तब तय होता है। ठीक युद्ध के घने क्षण में अर्जुनका मन बहुत चिंतित हो उठा है। कुछ साफ नहीं है। क्या हो रहा है? वह कहाँ तक ठीक हो रहा है। और फिर यह भी तय हो कि आततायी वही है तो भी उस तरफ सारे प्रियजन खड़े हैं। होगा-दुर्योधन आततायी होगा। लेकिन द्रोण? द्रोण आततायी नहीं हैं। दुर्योधन आततायी होगा। लेकिन भीष्म आततायी नहीं हैं। उनकी गोदमें ये सब बच्चें बड़े हुए हैं। दुश्मन एक नहीं है। दुश्मन एक बड़ी जमात है। उस जमातमें तय करना कठिन है। यही चिंताका कारण है। मनु जो नियम बना रहे हैं वह बहुत साधारण है। साधारणतया उपयोगी है। लेकिन इस विशेष स्थिति में मनु काम नहीं करेंगे। कर भी सकते थे। कर सकते थे एक ही हालत में कि अर्जुन इस स्थिति को झुठलाना चाहता तो कहता—मनु का हवाला देता-तो ठीक है- मनुने कहा है आततायी को मारो। मारते हैं।

लेकिन वह कोई बहुत बड़ा विचारपूर्ण कदम न होता। और एक तो बात पक्की थी, कि विचारपूर्ण इसलिए भी न होता कि यह गीता आपको उपलब्ध न होती। वह गीता उपलब्ध हो सकी है। वह अर्जुनके मन्थन से, मनन से, उसकी विचारणासे, उसकी जिज्ञासासे। चीजों को सीधा स्वीकार कर लिया होता तो ठीक था। युद्ध होता, कोई जीतता, कोई हारता। युद्ध

होता है तो कोई जीतता है, कोई हारता है, कहानी बनती है, कथा बनती है। महाभारत उतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ—जितनी गीता महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। महाभारत तो हुआ और समाप्त हो गया। गीता का समाप्त होना मुश्किल है। महाभारत तो एक घटना रह गई। और समय बीतता जाता है और भूलता चला जाता है। बल्कि सच तो यह है कि महाभारत याद ही इसलिए रह गया कि उसमें गीता भी घटी। नहीं तो महाभारत याद रहने जैसा भी नहीं था। हजारों युद्ध हुए हैं। आदमीने तीन हजार साल में १४ हजार युद्ध किए हैं। लेकिन युद्ध ठीक है—एक छोटा सा फ़ुटनोट बन जाता है इतिहास में। लेकिन, युद्ध से भी बड़ी घटना गीता बन गयी। वह महाभारतका जो युद्ध था, इससे भी महत्त्वपूर्ण घटना गीता बन गई। आज अगर महाभारत याद है तो गीता के कारण याद है। गीता महाभारत के कारण याद नहीं है। और इसलिये यह भी आपसे कहना चाहूँगा कि इस जगत में घटनाओं का मूल्य नहीं, इस जगत में विचारणाओं का मूल्य है। इस जगत में events—घटनाएँ घटती हैं और राख हो जाती हैं और विचार शाश्वत यात्रापर निकल जाते हैं। घटनाएँ मर जाती हैं। उन घटनाओं के बीच अगर किसी विचार का, किसी आत्मवान् विचार का जन्म हुआ तो वह अनन्त की यात्रापर निकल जाता है। महाभारत नहीं है, न भी हुआ हो तो क्या फर्क पड़ता है? लेकिन गीता न हुई हो तो बहुत फर्क पड़ता है। महाभारत एक छोटी सी घटना हो गयी। और जैसे समय आगे बढ़ता जाएगा छोटी होती जाएगी।

एक परिवार के भाइयों का-चचेरे भाइयों का, झगड़ा था। हो गया, निपट गया। उनकी बात भी समाप्त हो गयी। लेकिन गीता रोज रोज महत्त्वपूर्ण होती चली गयी। यह हो सकी महत्त्वपूर्ण इसलिए कि अर्जुन के पास मनु को मान लेने जैसी साधारण बुद्धि नहीं थी। अर्जुनके पास एक प्रतिभा थी जो पूछती है, जो संकट में सवाल उठाती है। आमतौरसे, संकट में सवाल उठाना बहुत कठिन है। घर में बैठकर गीता पढ़ना और सवाल उठाना बहुत आसान है। अर्जुन की स्थिति में सवाल उठाना बहुत जोखिम से भरा काम है। वह स्थिति सवाल की नहीं हैं। वह स्थिति कोई ब्रह्म जिज्ञासा की नहीं है। वह स्थिति कोइ गुरु शिष्य वृक्ष के नीचे बैठकर चिंतन मनन करें- इसकी नहीं है। युद्ध द्वार पर खड़ा है। हूँकारें हो गयी हैं, शंख बज गए हैं और इस क्षण में उस आदमी के मन में कंपन

है। हिम्मतवर आदमी है। कम्पन को उस युद्ध के बीच स्थल में प्रकट करता है और वहाँ भी सोच विचार करता है। इतने संकट में जो सोच विचार करता है वह साधारण प्रतिभा नहीं है। मनु से काम न चलेगा। उसे कृष्ण जैसा आदमी चाहिए।

मनु वहां होते वो कहते कि पढ लो मेरी मनुस्मृत ! उसमें लिखा है कि आततायी को मारो ! कर्तव्य स्पष्ट है। कर्तव्य सिर्फ नासमझों को सदा स्पष्ट रहा है। समझदारों को कभी स्पष्ट नहीं रहा। समझदार सदा संदिग्ध रहे हैं। क्योंकि समझदार इतना सोचता है और अक्सर दोनों पहलुओं पर सोचता है कि मुश्किल में पड़ जाता है कि कौन सही है ? कौन गलत है ? गलत और सही की स्पष्टता अज्ञानियों को जितनी होती है उतनी विचारशील लोगों को नहीं होती। अज्ञानी के लिये सब साफ होता है ! यह गलत है यह सही है ! यह हिन्दू है यह मुसलमान है ! यह अपना है वह पराया है लेकिन जितना चिन्तन आगे बढ़ता है, उतना ही संदेह खड़ा होता है। कौन अपना कौन पराया ! क्या ठीक-क्या गलत ! और इस जगत में जो भी मूल्यवान पैदा हुआ है, वह इस चिन्तन की पीड़ा के प्रसव को जिन्होंने सहा है, उनसे पैदा हुआ है। अर्जुन ने कष्ट सहा है उस घड़ी में। उस कष्ट के परिणाम में गीता प्रतिसंवेदित हुई है। नहीं, मनु से काम नहीं चल सकता है। उतने जड़ नियम सड़क पर ट्राफिक के नियम जैसे हैं कि बाएँ चलना चाहिए ! बिल्कुल ठीक है उस में कोई अडचन नहीं है। उल्टा करलें कि दाएँ चलना है तो भी कोई तकलीफ नहीं है। अमरीका में उल्टा चलते हैं। लिखा-दाएं चलना चाहिए तो आदमी दाएं चल रहा है। बायें चलें, दाएँ चलें, तय कर लेने से काम चल जाता है। लेकिन, ये कोई जीवन के परम आधार नहीं हैं और अगर कोई आदमी सवाल उठाए कि बाएँ चलने में ऐसी कौन सी खूबी है ? दायें क्यों न चला जाय ? तो दुनिया में कोई नहीं समझा पायेगा। यह सिर्फ व्यवस्थागत है। और अगर कोई बहुत विचारशील आदमी हो और सवाल उठाए कि बाएँ क्या है ? और दायें क्या है ? तो मुश्किल खड़ी हो जायगी। काम चलाउ है-मनु की जो व्यवस्था है अत्यंत काम चलाउ है। काम चलाउ व्यवस्था के उपर प्रश्न उठ रहे हैं अर्जुन के मन में। उसके प्रश्न परम हैं। वह यह पूछ रहा है कि मिल जायगा राज्य इतनों को मारकर, अपनों को मारकर-क्या होगा अर्थ ? क्या होगा प्रयोजन ? माना कि जीत जाऊँगा-क्या होगा ? माना कि आततायी हैं काट

डालेंगे उन्हें, बदला पूरा हो जाएगा। फिर क्या होगा ? बदला ही बदलेका क्या अर्थ है ! और न मालूम कितने निहत्थे मर जाएँ-न मालूम कितने निर्दोष मर जाएँगे-जिनका कोई संबन्ध नहीं है। जो युद्ध में घसीट कर ले आए गये हैं क्योंकि उनका कहीं कोई संबन्ध है—उन सबका क्या होगा ? नहीं, उसके प्रश्न ज्यादा कीमती हैं। मनु से काम नहीं चल सकता है।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धबान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा, सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

अर्थ : इसलिये हे माधव ! अपने बांधव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना हमारे लिये योग्य नहीं हैं, क्योंकि अपने कुटुम्बको मारकर हम सुखी कैसे होंगे ?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं, मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

अर्थ : यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए यह लोग कुलके विनाशके दोष को, और मित्रों का द्रोह करने के पापको नहीं देखते हैं।

आचार्यश्री :

अर्जुन कह रहा है कि वे विचारहीन हैं-हम भी विचारहीन होकर जो करेंगे वह कैसे शुभ होगा ? माना कि वे गलत हैं लेकिन गलत के प्रत्युत्तर में हम भी गलत करेंगे तो क्या वह ठीक होगा ? क्या एक गलत का प्रत्युतर दूसरे गलत से दिए जाने पर सही का निर्माण करता है ? वह यह पूछ रहा है कि भूल है उनकी तो हम भी भूल करेंगे तो दो भूलें मिलके ठीक हो जाती है ? कि दुगनी हो जाती है ? माना कि उनका चित्त भ्रमित हो गया हैं—माना कि बुद्धि नष्ट हुई है तो क्या हम भी अपनी बुद्धि नष्ट करलें ? और जो मिलेगा क्या वह इस योग्य है ? क्या उसकी इतनी उपादेयता है ? क्या इसका इतना मूल्य है ? ध्यान रखें-इसमें अर्जुन के मनमें दोहरी बात चल रही है। एक-वह कह रहा है-क्या इसका कोई मूल्य है ? इसमें दो बातें हैं। हो सकता है कोई मूल्य हो और कृष्ण उसे मूल्य बता पाये तो वह लड़ने के लिए रेशनेलाइज rationalize कर लें। हो सकता है कृष्ण समझा पायें कि लाभ है, कल्याण है, हो सकता है कृष्ण समझा पायें कि बुराईको बुराई से काट दिया जायेगा और तब जो शेष बचेगा वह शुभ होगा तो वह लड़नेके लिए अपने को तैयार कर ले। आदमी

अपनेको तैयार करने के लिए बुद्धिगत कारण खोजना चाहता है । अर्जुन के मनमें दोनों बाते हैं । वह जिस तरह से प्रश्न को मौजूद कर रहा है वह यह है कि या तो मुझे भाग जाने के लिए स्वीकृति दें या तो मैं पलायन (escape) कर जाऊँ और या फिर मैं युद्ध में उतरूं तो मुझे प्रयोजन स्पष्ट करादें। वह अपने मनको साफ कर लेना चाहता है । युद्ध में उतरें तो यह जान के, निश्चितमना, कि जो हो रहा है, शुभ हो रहा है। या फिर युद्ध से भाग जायें । ये तो विकल्प उसे दिखाई पड़ रहे हैं । वह दोनों के लिए राजी दिखाई पड़ता है । दोनों से कोई भी एक हो जाय । इसे थोडा समझ लेना जैसा है ।

आदमी सदासे अपनेको बुद्धिमान, विचारशील (rational) समझता रहा है। अरस्तूने तो आदमीको (rational animal) रेशनल एनीमल ही कहा है। कहा है कि बुद्धिमान प्राणी है। लेकिन जैसे जैसे आदमीके संबंधमें समझ हमारी बढ़ी है वैसे वैसे पता चला है कि उसकी बुद्धिमानी सिर्फ अपनी अबुद्धिमानियोंको बुद्धिमानी सिद्ध करनेसे ज्यादा नहीं है । आदमीका रिझन (reason) सिर्फ उसके भीतर जो इररेशनल (irrational) है जो बिल्कुल अबौद्धिक है उसको जस्टीफाइ (justify) करनेकी कोशिशमें लगा रहा है। अगर उसे युद्ध करना है तो पहले वो सिद्ध कर लेना चाहेगा कि युद्ध से मंगल होगा, कल्याण होगा। फिर युद्धमें उतर जाएगा । अगर उसे किसीकी गर्दन काटनी है तो वो पहले सिद्ध कर लेना चाहेगा कि जिसकी गर्दन कट रही है उसके ही हितमें यह कार्य हो रहा है । तब फिर, वो गर्दन आसानीसे काट सकेगा। अगर उसे आग लगानी है तो वह तय कर लेना चाहेगा कि आग लगनेसे धर्मकी रक्षा होगी । तो वह आग लगाने के लिए तैयार हो जाएगा। आदमीने उसके भीतर जो बिल्कुल अबौद्धिक तत्त्व हैं उनको भी बुद्धिमानीसे सिद्ध कर लेनेकी निरन्तर चेष्टा की है । अर्जुन भी वैसी ही स्थितिमें है। उसके भीतर लड़नेकी तैयारी तो है अन्यथा इस युद्ध के मैदान तक आनेकी कोई जरूरत न थी । उसके मनके भीतर युद्धका आग्रह तो है, राज्य वह लेना चाहता है । जो हुआ है उसके साथ उसका बदला भी चुकाना चाहता है । इसलिए तो युद्धके इस आखिरीं क्षण तक आ गया है । लेकिन, वैसी तैयारी नहीं है। जैसे दुर्योधन की है जैसी भीम की है । पूरा नहीं है । मन बँटा हुआ है (split) टूटा है । कहीं भीतर लग भी रहा है, कि गलत है, व्यर्थ है; और कहीं लग भी रहा है कि करना ही पड़ेगा, प्रतिष्ठाका, अहंकारका, कुलका, हजार बातों

का सवाल है, दोनों बातें उसके भीतर चल रही हैं । दोहरा उसका मन है । डबल-माइन्ड (double-mind) है । और ध्यान रहे-विचारशील आदमी में सदा ही दोहरा मन होता है । विचारहीनमें दोहरा मन नहीं होता । निर्विचारमें भी दोहरा मन नहीं होता। लेकिन विचारशील आदमी का दोहरा मन होता है । विचारशील आदमीका मतलब है जो अपने भीतर ही निरन्तर डायलॉग (dialogue) में और डिस्कशन (discussion) में लगा है । जो अपने भीतर ही विवाद में लगा है। अपने को ही दो हिस्सों में करके, क्या ठीक, क्या ठीक नहीं इसका उत्तर-प्रत्युत्तर कर रहा है। विचारशील आदमी चौवीस घंटे अपने भीतर चर्चा कर रहा है—स्वयं से ही । वह चर्चा अर्जुन के भीतर चलती रही होगी । समझा बुझा के वह अपने को युद्धके मैदान पर ले आया है—कि नहीं, लड़ना उचित है । लेकिन युद्ध की पूरी स्थिति का उसे पता नहीं था । पिछले महायुद्ध में जिस आदमीने हिरोशिमा पर एटम बम्ब गिराया उसे कुछ भी पता नहीं है कि क्या होगा। उसे इतना ही पता है कि एक बटन दबा देनी है । और नीचे एटम गिर जाएगा । उसे यह भी पता नहीं है कि इस एटमसे एक लाख आदमी मरेंगे । उसे कुछ भी पता नहीं है । उसे सिर्फ एक ओर्डर है, एक आज्ञा है-जो उसे पूरी करनी है । और आज्ञा यह है कि उसे जाके हवाई जहाजसे एक बटन दबा देनी है । हिरोशिमा के ऊपर वो बटन दबाके लौट आया । जैसे सारी दुनियाको पता चला ऐसे ही उसको भी पता चला । एक लाख आदमी मर गए । फिर उसकी नींद हराम हो गयी । फिर वह आदमी रात दिन लाखों मुर्दे देखने लगा । उसके प्राण थरथराने लगे, काँपने लगे । उसके हाथ पैरमें कम्पन होने लगा । फिर तो अन्ततः उसने हमले करने शुरु कर दिये अपने पर । नाड़ी काट डाली एक दिन; सिर पर हथौड़ी मार दी; फिर तो उसे पागल खानेमें रखना पड़ा । फिर तो उसने दूसरों पर भी हमले शुरू कर दिये । फिर तो उसे जंजीरोंमें रखना पड़ा। उसकी नींद बिल्कुल चली गयी । और वह आदमी, एक ही, एक ही अपराध की ग्लानिसे भर गया। यह गिल्ट (guilt) एक ही उसको पकड़ गयी कि मैंने लाख आदमी मारे । उसे कोई पता नहीं था । अब जो हमारी, हमारी जो युद्धकी व्यवस्था है—बिल्कुल (inhuman) है। अब उसमें पता नहीं चलता-मारनेवाले को भी पता नहीं चलता कि वो लाख आदमिओं की मौतका बटन दबा रहा है। लेकिन महाभारतमें स्थिति और थी । सब चीजें सामने थीं । युद्ध सीधा मानवीय था।

आमने सामने सब खड़े थे। अर्जुन देख सकता था रथ पर खड़ा होकर कि क्या होगा परिणाम ? उसे दिखाई पड़ने लगा-फलां मित्र है—वह मरेगा। उसके छोटे बच्चे हैं घर पर। ध्यान रहे-युद्ध अब जो है वह inhuman हो गया, अमानवीय हो गया है। इसलिए अब बड़ा खतरा है। क्योंकि लड़ने वाले को भी साफ पता नहीं चलता कि क्या होगा ? जो हो रहा है बिल्कुल अंधेरेमें हो रहा है। और जो आदमी तय करते हैं उसको, उनके पास भी फिगर (figure) होते हैं-आदमी नहीं होते हैं-आँकडे होते हैं। उनके पास होता है-कि लाख आदमी मरेंगे। एक लाख आदमी मरेंगे यह सुनके कुछ भी पता नहीं चलता। एक लाख आदमिओं को सामने खड़ा करिये। खड़े हो जाइये मंच पर-देखिए कि ये एक लाख आदमी मरेंगे। तब इनकी एक लाख पत्नियाँ भी दिखाई पड़ती हैं, इनके लाखों बच्चे भी दिखाई पड़ते हैं। इनकी बूढ़ी माँ भी होगी। इनके पिता भी होंगे। इनकी न मालूम क्या क्या जिम्मेवारियाँ होंगी। इन एक लाख को मारनेकी जिम्मेवारी अगर हिरोशिमा पर बंब डालने वाले के सामने होती तो मैं भी सोचता हूँ कि वह आदमी कहता इससे मैं मर जाना पसंद करूंगा। यह आज्ञा मैं नहीं मानता। उसके सामने भी सवाल उठता। इनको मारना है-क्या नौकरी के लिए ?

अजुन के मन में सवाल उठा-सामने था सब चित्र। उसे सब दिखाई पड़ने लगा। वे विधवाएँ रोती विलपती दिखाई पड़ने लगीं। इनमें न मालूम कितने उसके प्रियजन थे। उनकी विधवाए होंगी, उनके बच्चें तड़पेंगे, रोयेंगे। यह सब लाशों से भर जाएगा मैदान। यह इतना साफ उसे दिखाई पड़ा कि अपने को समझा बुझाके लाया था कि लड़ना उचित है-वह सब डाँवाडोल हो गया। उसके दूसरे मनने कहना शुरू किया कि यह तू क्या करने जा रहा है। यह तो पाप होगा-इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है ? और इसलिए कि राज्य मिल जाय ? और इसलिये कि धन मिल जाय ? इसलिये कि थोड़ा सुख मिल जाय ? इन सबको मारनेकी तेरी तैयारी है ? निश्चित ही वह विचारशील आदमी रहा होगा। उसके मनने इन्कार करना शुरू कर दिया। लेकिन इन्कारमें दूसरा मन भीतर बैठा हुआ है। और वह दूसरा मन भी बोल रहा है कि अगर कोई रेशनलाइजेशन मिल जाय-अगर मिल जाय कि नहीं इसमें कोई हर्ज नहीं-यह उचित है बिल्कुल यह औचित्य मालूम पड़ जाय तो वह अपने को इकठ्ठा कर लें, एकजुट कर ले-युद्ध में उतर जाय। कृष्ण से पूछते वख़्त अर्जुन को भी पता नहीं है कि

उत्तर क्या मिलेगा ? और कृष्ण से पूछते वख़्त अर्जुन को भी साफ नहीं है कि स्थिति बादमें क्या बनेगी ? कृष्ण जैसे आदमी predictable नहीं होते-कृष्ण जैसे आदमियों के उत्तर निश्चित नहीं होते, रेडिमेड नहीं होते। कृष्ण जैसे आदमी के साथ पक्का नहीं है कि वह क्या कहेंगे। लेकिन अर्जुन के साथ पक्का है कि वह दो बातें चाह रहा है। या तो यह सिद्ध हो जाये कि युद्ध उचित है-नीति संमत है-धार्मिक है-लाभ होगा-कल्याण होगा-श्रेयस् मिलेगा-इसलोक में परलोक में सुख मिलेगा-तो वह युद्ध में कूद जाये। और अगर यह सिद्ध हो जाये कि यह नहीं हो सकता तो युद्ध से भाग जाये। उसके सामने दो विकल्प स्पष्ट हैं। और उन दोनों के बीच उसका मन डोल रहा है। और दोनों के बीच उसके भीतर मनका बँटाव है। लड़ना भी चाहता है। अगर उसका मन लड़ना ही चाहता हो तो कृष्ण से पूछने की कोई भी जरूरत नहीं है।

अभी मैं एक गांव में था। एक युवक मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। आपकी क्या सलाह है ? मैंने कहा-जबतक मेरी सलाह की जरूरत हो तबतक तुम संन्यास मत लेना। क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं कि मेरी सलाह से लिया जा सके। जिस दिन तुम्हें ऐसा लगे कि सारी दुनिया भी कहे कि संन्यास मत लो तब भी तुम्हे लेने जैसा लगे तभी तुम लेना। तो ही संन्यास के फूल में आनन्द की सुगन्ध आ सकेगी। अन्यथा नहीं आ सकेगी।

वह अर्जुन सलाह नहीं मांगता-अगर उसको साफ एक मन हो जाता कि गलत है-चला गया होता। उसने कृष्ण को कहा होता कि सम्हालो इस रथको, लेजाओ इन घोड़ों को जहाँ लेजाना हो और जो करना हो करो-मैं जाता हूँ। और कृष्ण कहते कि मैं कोई सलाह देता हूँ तो वह कहता कि बिना मांगी सलाह न दुनिया में कभी मानी गयी, न मानी जाती। अपनी सलाहें अपने पास रखें। नहीं, लेकिन वह सलाहें मांग रहा है। सलाहें मांग रहा है वही बता रहा है कि उसका दोहरा मन है। अभी उसको भी भरोसा है कि कोई सलाह मिल जाय तो युद्ध कर ले। यह भरोसा है उसके भीतर इसलिए कृष्ण से पूछ रहा है। अगर यह भी पक्का होता कि युद्ध करना उचित है, तब कृष्ण से कोई सलाह लेने की कोई जरूरत न थी। युद्ध की सब तैयारी हो गयी थी। अर्जुन डाँवाडोल है। अर्जुन

बँटा है । इसलिए वह सारे सवाल उठा रहा है । उसके सवाल महत्त्वपूर्ण हैं । और जो आदमी भी थोड़ा विचार करते हैं उन सबकी जिंदगी में ऐसे सवाल रोज ही उठते हैं । जब मन बट जाता है और दोहरे उत्तर एकसाथ आने लगते हैं और सब निर्णय खो जाते हैं । अर्जुन संशय की अवस्था में है । decisiveness खो गई । जब भी आप किसी से सलाह मांगते हैं तब वह सदा ही इस बात की खबर होती है कि अपने पे भरोसा खो गया है । Self-confidence खो गया है । अब अपने से कोई आशा नहीं उत्तर की । क्योंकि अपने से दो उत्तर एक से बलपूर्वक आ रहे हैं । एक सी emphasis को लेकर आ रहे हैं । दोनों में तय करना मुश्किल है । कभी एक ठीक कभी दूसरा ठीक मालूम पड़ता है । तभी आदमी सलाह मांगने जाता है । जब भी कोई आदमी सलाह मांगने जाता है तब जानना चाहिए वह भीतर से इतना बट गया है कि अब उसके भीतर से उसे उत्तर नहीं मालूम पड़ रहा है । ऐसी उसकी दशा है । वह अपनी उसी दशा का वर्णन कर रहा है ।

प्रश्न : युद्धके मैंदानमें युद्ध शुरू होनेसे पहले इतनी लंबी गीता का-१८ अध्यायका संवाद अर्जुन और कृष्णके बीच कैसे संभव हो सकता है ? क्या वो साइकोलोजिकल (मनोवैज्ञानिक) टाइम था या कुछ और समय था ?

उत्तर : कृष्णसे इतनी लम्बी चर्चा निश्चित ही प्रश्नवाची है । निश्चय ही प्रश्न उठता है । युद्ध के मैदानपर, जहां कि योद्धा तैयार हो लड़ने को, जूझनेको, वहां यह अठारह अध्याय यह इतनी लम्बी किताब अगर कृष्णने बिल्कुल उस तरह से कही हो जैसे कि गीता-भक्त दोहराते हैं तो भी काफी समय लग गया होगा । अगर बिना रुके और बिना अर्जुन की तरफ देखे आँख बन्द करके बोलते ही चले गए हो तब भी काफी वख्त लग जायेगा। यह कैसे सम्भव हुआ होगा ? दो बातें इस सम्बन्ध में । निरन्तर यह सवाल गूंजता रहा है। इसलिए कुछ लोगों ने तो यह कह दिया कि गीता महाभारत में प्रक्षिप्त है। वो बाद में डाल दी गयी है—यह हो नहीं सकता । कुछ लोगोंने कहा कि वहां संक्षिप्त में बात हुई होगी । फिर उसको विस्तार से बादमें कविने फैला दिया है । दोनों ही बातें मेरे लिए सही नहीं है ।

मेरे लिए तो गीता घटी है । और वैसी ही घटी है जैसी सामने है। लेकिन, घटनेके क्रमको थोड़ा समझना जरूरी है । यह सारी बात-चीत आमने सामने हुई हो, यह सारी बातचीत जैसे हम और आप बोल रहे हैं ऐसी हुई हो तो इसमें कृष्ण और अर्जुन ही भागीदार न रह जाते । इसमें बहुत बड़े लोग थे । बड़ी भीड़ थी । चारों तरफ से इसमें और लोग भी भागीदार हो गये होते । इसमें और लोगोंने भी सवाल उठाये होते । इसमें और सारे लोग बिल्कुल चुप ही खडे हैं । इस तरफ भी योद्धा है, उस तरफ भी योद्धा है । यह बात दोनोंकी चलती है । घंटों-इसमें कोई बोला नहीं बीचमें ? किसीने इतना भी न कहा कि यह बातचीत का समय नहीं है-युद्ध का समय है !-शंख बज चुके हैं-अभी यह चर्चा नहीं चलना चाहिए । नहीं, कोई नहीं बोला। मेरे देखे यह चर्चा 'टेलिपथिक' है । यह चर्चा सीधी आमने सामने नहीं हुई telepathy है । थोड़ी समझनी पड़े-तो ख्यालमें आए, अन्यथा ख्यालमें नहीं आ पायेगी । एक दो-तीन उदाहरणसे समझाने की कोशिश करूँ ।

एक फकीर था अभी युनानमें जार्ज गुर्जिएफ़ । तीन महीनेके लिए रूसके एक बहुत बडे गणितज्ञ आस्पेन्स्की और उसके तीस और शिष्यों को लेकर, वह तिफलिसके एक छोटे से गांवमें जाकर बैठ गया । इन तीस लोगोंको एक बडे बंगलेमें उसने कैद कर रखा था-कैद । क्योंकि बाहर निकलनेकी कोई आज्ञा न थी । और, इन तीस लोगों को कहा कि कोई एक शब्द तीन महीने बोलेगा नहीं । न केवल शब्द नहीं बोलेगा, इशारे से भी नहीं बोलेगा, आंख से भी नहीं बोलेगा, हाथसे भी नहीं बोलेगा । कहा था कि ये तीस लोग जो इस मकानमें रहेंगे तीन महीने प्रत्येकको ऐसे रहना है जैसे वह अकेला ही हो। कोई दूसरा मौजूद ही नहीं है। दूसरेको रेकागनाइज (recognize) भी नहीं करना है। आंखसे भी, इशारेसे भी, दूसरा आरपार होता निकल जाये तो देखना भी नहीं है । और गुर्जिएफने कहा कि जिसको भी मैं पकड़ लूँगा, जरासा भी इशारा करते हुए, दूसरे को स्वीकार करते भी मे पकड़ लूँगा-कि दूसरा निकल रहा था और तुम बचके निकले तो भी मै बाहर कर दूँगा । क्योंकि तुमने दूसरे को स्वीकार कर लिया कि दूसरा यहां है । बातचीत हो गयी । तुम बचके निकले इशारा हो गया । १५ दिन में २७ आदमी बाहर कर दिए गए । बड़ा मुश्किल मामला था । जहां तीस आदमी मौजूद हो-एक कमरेमें १०-१०, १२-१२ लोग बैठे हो,

वहां दूसरोंको बिल्कुल भूल जाना कि वे हैं ही नहीं-अकेले जीने लगना कठिन था । इतना कठिन नहीं-जितना हम सोचते हैं-क्योंकि तीन आदमी बच ही गए । तीन भी छोटी संख्या नहीं है । इतना कठिन नहीं-क्योंकि एक आदमी जंगलमें बैठके, आंख बंद करके भीड़में हो जाता है-भीड़में बैठके अकेला क्यों नहीं हो सकता ? मनकी सभी क्रियायें उल्टी हो सकती हैं । reversible हैं । अगर जंगलमें बैठके आदमी अपनी पत्नी से बातचीत कर सकता है तो अपनी पत्नीके पास बैठके बिल्कुल अकेला हो सकता है । इसमें कोई अड़चन नहीं है । तीन आदमी बच गए-उनमें गणितज्ञ आस्पेन्स्की भी था । वह खुद भी एक वैज्ञानिक चिंतक था । और इधर सौ वर्षोंमें गणित पर शायद सर्वाधिक गहरी किताब उसने लिखी हैं । टर्सियम (?) आर्गनम । कहते हैं कि योरोपमें तीन बड़ी किताबें लिखी गयी हैं अबतक । एक अरस्तु का आर्गनम, फिर बेकनका नोवम आर्गनम, और फिर आस्पेन्स्कीकी किताब । वह बड़ा वैज्ञानिक चिन्तक था । यह भी उन तीनमें बच गया था । तीन महीने बीत गए । तीन महीने वह ऐसे वहां रहा जैसे अकेला है । कमरोंमें जो लोग थे वे तो भूल ही गए । बाहर जो दुनिया थी वह भी भूल गये । और जो आदमी दूसरों को भूल जाय वह अपनेको भी भूल जाता है । स्मरण रखें-अगर अपनेको याद रखना हो तो दूसरोंको याद रखना जरूरी है । क्योंकि मैं और तू एक ही डंडेके दो छोर हैं । इनमेंसे एक गया कि दूसरा फौरन गया । ये दोनों बचते हैं या दोनों चले जाते हैं । कोइ कहे कि मैं, मैं को बचा लूँ और तू को भूल जाऊं तो असंभव है । क्योंकि "मैं" जो है, वह "तू" की ही छोर है । वह "तू" का ही उत्तर है । अगर 'तू' भूल जाय तो "मैं" बिखर जाता है । अगर 'मैं' भूल जाय तो 'तू' विदा हो जाता है । वे दो एक साथ बचते हैं-अन्यथा नहीं बचते । वे एक ही सिक्केके दो पहलू हैं । दूसरे भूल गए यह तो ठीक था । आस्पेन्स्की खुदको भी भूल गया । फिर बचा सिर्फ अस्तित्व । तीन महीने बाद गुर्जिएफ सामने बैठा है । अचानक आस्पेन्स्कीको सुनायी पड़ा कि किसीने बुलाया । और सुना उसने आस्पेन्स्की, चौंकके चारों तरफ देखा कि कौन है ? लेकिन कोई बोल नहीं रहा है । सामने गुर्जिएफ बैठा है । उसने गुर्जिएफको गौरसे देखा इन तीन महीनों में । गुर्जिएफ हँसने लगा । फिर भीतर से आवाज आयीः पहचान नहीं रहे मेरी आवाज ? मै गुर्जिएफ बोल रहा हूँ । सामने होठ बंद है । वह आदमी चूप बैठा है । आस्पेन्स्की बहुत हैरान

हुआ । उसने कहा कि मैं यह क्या अनुभव कर रहा हूँ ? वह पहली दफा तीन मही में बोला । गुर्जिएफने कहा कि अब तुम उस जगह आ गए हो-मौनकी, जहां बिना शब्दके बातचीत की जा सकती है । अब में तुमसे सीधे बोल सकता हूँ । शब्दोंकी अब कोई जरूरत नहीं है ।

अभी रूसके एक दूसरे वैज्ञानिक फायोदेवने, एक हजार मील दूर, बिना किसी माध्यमके, संदेश भेजने के प्रयोगमें सफलता पायी । आप भी पा सकते हैं । बहुत कठिन मामला नहीं है। कभी एक छोटा सा प्रयोग घरमें कर लें । छोटे बच्चेको चुन लें । अंधेरा कर लें कमरें में । एक कोने में उसे बिठा दें । दूसरे कोने में आप बैठ जायें और, उस बच्चे से कह दें कि तू आँख बन्द कर ले और ध्यान मेरी तरफ रख । और सुनने की कोशिश करे कि मैं कुछ बोल तो नहीं रहा हूं। और एक ही शब्द अपने भीतर बार-बार दोहराये चले जायें । गुलाब-गुलाब । गुलाब बोलें मत । भीतर दोहराये चले जायें । घण्टे आधा घण्टे में वह बच्चा बोलने लगेगा कि आप गुलाब बोल रहे हैं । और, आप भीतर ही बोलें—आप बाहर मत बोलें । इससे उल्टा भी हो सकता है, लेकिन जरा देर लगेगी । अगर बच्चा वहाँ बैठ के अपने मनमें एक शब्द सोचे और आप पकड़ना चाहे तो शायद दो-तीन दिन लग जाएँगे । बच्चा जल्दी पकड़ लेगा । आदमी जिसको हम जिंदगी कहते हैं, उसमें बिगड़ने के सिवा और कुछ भी नहीं करता । बूढ़े बिगड़े हुए बच्चोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होते । लेकिन बच्चा घण्टे आधा घण्टे में पकड़ना शुरू कर देगा । एक ही शब्द दोहरायें । और अगर एक पकड़ लिया जाय तो फिर अभ्यास से पूरा वाक्य पकड़ा जा सकता है। कृष्ण और अर्जुनके लिए, ध्यानमें रखना जरूरी है कि यह चर्चा बाहर हुई चर्चा नहीं है । यह चर्चा गहरी है । और यह चर्चा बिलकुल भीतरी है । इसलिये इसमें युद्धके आसपास खड़े लोग भी गवाह नहीं थे और इसलिए हो सकता है यह भी कि जिन्होंने महाभारत लिखा हो उन्होंने पहले गीता उसमें न जोड़ी हो यह हो सकता है । यह हो सकता है-क्यों कि इतिहासकारने जिसने लिखी है-उसने न जोड़ी हो, लेकिन, संजय सुन पा रहा है। क्योंकि संजय जो देख पाता है-इतने दूरसे वह सुन भी पा सकता है । असलमें, दुनिया को संजयसे पहली दफा गीता सुननेको मिली है । कृष्णसे सुननेको पहली दफा नहीं मिली है । पहली दफा

अर्जुनने सुनी है। वह सूचना बहुत भीतरी है। उस सुननेका बाहरी कोई प्रमाण नहीं था। और दूसरी बात आपसे कहना चाहूंगा कि यह टेलीपेथिक कम्यूनिकेशन है। गीता एक आन्तर्सम्वाद है-जिसमें शब्दोंका उपर उपयोग नहीं हुआ।

महावीरके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वो कभी नहीं बोले। और जितने उनके शब्द हैं-उन्होंने नहीं बोले। उनके पास लोग खड़े रहते थे। महावीर उनसे बोलते। उपरसे नहीं-क्योंकि हज़ारों लोग सुनने आए होते-उनको कुछ सुनाई न पड़ता। फिर वह आदमी जोरसे बोलता कि महावीर ऐसा कहते हैं। इसलिए महावीरकी वाणीको शून्य वाणी, शब्दहीन वाणी कहा गया है। उन्होंने सीधा कभी नहीं बोला। किसीसे भीतरसे बोला और किसीने उसे बाहर प्रकट किया। करीब करीब ऐसे-जैसे इस माइकसे मैं बोल रहा हूँ और आप सुन रहे हैं। इस माइककी तरह एक आदमीका भी उपयोग हो सकता है। कृष्ण और अर्जुनके बीच जो बात हुई थी, अगर संजय ने न सुनी होती तो खो गयी होती। बहुत सी और बातें भी बहुत बार हुअी हैं, और खो गयी हैं। महावीरके बहुत वचन उपलब्ध नहीं हैं।

बुद्धने एक दिन अपने सारे भिक्षुओं को इक्ठ्ठा किया है; और हाथमें एक कमल का फूल लेकर वे वहाँ आए हैं। फिर बैठ गए। और उसे कमलके फूलको देखने लगे और देखते रहे। फिर लोग हैरान हो गए। थोड़ी ही देरमें बेचैनी शुरू हो गयी। कोई खांसा होगा, किसीने करवट बदली होगी, क्यों कि बहुत देर हो गयी। वे चूप क्यों बैठे हैं? बोले, बोले, बोले! फिर आखिर आधा घंटा बीतने लगा तो बेचैनी वहुत बढ़ गई। किसीने खड़े होकर कहा-"आप क्या कर रहे है-हम सब आपको सुनने आए हैं -आप बोलते नहीं"। बुद्ध ने कहा—"मैं बोल रहा हूं-सुन लो सुनो"। लेकिन लोगोंने कहा-"आप कुछ बोलते नहीं-क्या सुनें?" तभी एक भिक्षु जिसका नाम था-महाकश्यप-वो हँसने लगा। तो बुद्ध ने उसे बुलाके वह फूल दे दिया। और कहा कि "सुनो। जो शब्दसे बोला जा सकता था वह मैं तुमसे कह चुका! और जो शब्द से नहीं बोला जा सकता-भीतर ही बोला जा सकता था-वह मैंने महाकश्यपसे कह दिया है। अब तुम्हें पूछना हो तो महाकश्यपसे पूछ लेना।" महाकश्यपसे बुद्धने क्या कहा? यह अब तक बुद्धके भिक्षु पूछते हैं एक दूसरेसे। क्यों कि वो महाकश्यपसे जब भी किसीने पूछा

तो वह हँसने लगा। और उसने कहा-"जब बुद्ध नहीं कह सके तो मैं क्यों उपद्रव में पड़ने लगूँ? यानि कहना होता तो बुद्ध ही तुमसे कह देते। और जब वो भूल चूक नहीं किये तो मैं करने वाला नहीं हूँ।" फ़िर महाकश्यप ने किसी को फिर, मौन से कहा। फिर उस आदमीने भी किसीसे नहीं कहा। और ऐसे छः आदमियों की परम्परा है-और तब छठवां आदमी था बोधिधर्म। उसने पहली दफा उस बात को कहा। इस बीच कोई नौ सौ वर्ष बीत गए। बोधिधर्मने पहली दफा वह कहा है जो बुद्धने महाकश्यप से कहा था। और उसने कहा-क्यों?-क्योंकि जब बोधिधर्मने चीन में पहली दफा जाकर कहा कि अब मैं वह कहता हूँ जो बुद्धने महाकश्यपसे कहा था। तो लोगों ने कहा-"अबतक किसी ने नहीं कहा-तुम क्यों कहते हो?" तो उसने कहा कि अब चुपचाप सुननेवाला कोई भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए मजबूरी है और मैं मरने के करीब हूँ। वह बात खो जायगी जो बुद्धने महाकश्यपसे कही थी। अब जितनी थी गलत सही मुझसे बन सकती है मैं कहे देता हूँ। यह घटना है।

इसलिए, पहली बात आपसे कहनी है कि कृष्ण और अर्जुन के बीच गीता मौन-संवादमें घटी है। दूसरी बात आपसे कहनी है कि मौन-संवाद का टाइम स्केल (time-scale) अलग है। इसे समझना भी जरूरी होगा। नहीं तो आप कहेंगे कि मौन-संवाद में भी तो कमसे कम घंटे, डेढ़ घंटे, दो घंटे तो लगते ही। क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं आपसे ऊपर से कहूँ कि भीतर से कहूँ। समय तो लगेगा। तब आपको थोड़ा, समय के स्केल को समझना पड़ेगा। आपको कभी एक दफा कुर्सी पर बैठे बैठे झपकी लग जाती हैं और आप एक सपना देखते हैं। और सपने में देखते हैं कि आपकी शादी हो गयी, घर बस गया, नौकरी लग गयी, मकान खरीद लिया, बच्चे हो गए, बच्चे बड़े हो गए, शहनाई बज रही है-लड़के की शादी हो रही है। और तभी, कोई आपको बगल से आपका ऑफिसर आ के उठाता है। और आप घड़ी में देखते हैं और पाते हैं कि मुश्किल से एक मिनिट बीता। झपकी लगी। तब बड़ी मुश्किल होती है कि एक मिनिट में इतना लम्बा उपद्रव कैसे हुआ होगा? यहाँ तो जिंदगी लग जाती है इतना उपद्रव करनेमें, तीस चालीस साल लग जाते हैं। एक मिनिट में कैसे हुआ! लेकिन बिल्कुल हुआ। असलमें dream-time अलग है। उसका स्केल अलग है! स्वप्न के समयकी जो धारणा है बिल्कुल अलग है। इसलिए, एक मिनिटके स्वप्न

में जिंदगी भरके सपने देखे जा सकते हैं। एक मिनिटमें पूरी जिंदगी देखी जा सकती है । आमतौरसे लोग कहते हैं, जब कोई नदीमें डूब के मरता है तो आखिरी डूबकीमें अपनी पूरी जिंदगी को फिरसे देख लेता है । देख सकता है । इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। समय अलग है स्वप्न का, जागने का समय अलग है । लेकिन जागनेमें भी समय का स्केल २४ घंटे एक सा नहीं रहता। उसमें पूरे वख्त बदलाहट होती रहती है। वह flicker करता है । इसलिए जब आप दुःखमें होते हैं तो समय लम्बा हो जाता हैं और जब सुखमें होते हैं तो छोटा हो जाता है । कोई प्रियजन पास आके बैठ जाता है, घंटा बीत जाता है, लगता है अभी अभी तो आए थे, क्षण भर हुआ । और कोई दुश्मन आकर बैठ जाता है। क्षणभर भी नहीं बैठता। ऐसा लगता है कब जाएगा, जिंदगी बीती जा रही है । घड़ीमें तो उतना ही समय चलता है, लेकिन आपके मनके समय की धारणा पूरे वख्त छोटी बड़ी होती रहती है । घरमें कोई मर रहा हो, तो रातभर उसके खाटके पास बैठे तो ऐसे लगेगा, eternity हो गयी—अनंत मालूम पड़ता है । अनंत मालूम पड़ती है रात, खतम होती नहीं मालूम पड़ती । कब होगी खत्म ? लेकिन वही कोई अपने प्रियजनके साथ नृत्य कर रहा है तो रात ऐसे भागने लगती है कि आज रात दुश्मन हो, और जल्दी कर रही है, रात जल्दीसे भाग जाती है और सुबह आ जाती है और ऐसा लगता है, सांझ और सुबहके बीचमें कोई वख्त ही नहीं था । बस, सांझ आयी और सुबह आ गयी । बीचका वख्त गिर जाता है । सुखमें समय छोटा मालूम होता है । छोटा हो जाता है—मालूम होता नहीं—हो ही जाता है । दुःखमें बड़ा हो जाता है। दिनमें भी. जागते में भी, समय पूरे वख्त बदल रहा है । और अगर कभी आनन्द का अनुभव किया तो समय समाप्त हो जाता है । जीसस से किसीने पूछा कि तुम्हारे प्रभुके राज्यमें खास बात क्या होगी ? तो जीससने कहा— There shall be time no longer. समय नहीं होगा । खास बात यह होगी । तो उन्होंने पूछा कि यह हमारी समझमें नहीं आता कि समय नहीं होगा तो फिर सब काम कैसे चलेगा ? आनन्दके क्षणमें समय नहीं होता । अगर कभी ध्यान का एक क्षण भी आपके भीतर उतरा है—कभी आनन्द का एक क्षण भी आपको नचा गया है तो उस वख्त समय नहीं होता है । समय समाप्त हो गया होता है । इस संबंधमें दुनिया के वे सारे लोग सहमत हैं चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे लाओ-त्से, चाहे जीसस, चाहे मुहम्मद चाहे

कोई और—वे सब राजी हैं कि वह जो क्षण है आत्म-अनुभव का, आनन्द का, ब्रह्म का, वह टाइमलेस मोमेंट है। वह समय-रहित क्षण है या कालातीत है। तो जो टेलिपथी का समय है, उसके स्केल अलग हैं। क्षण भर में भी यह बात हो सकती है । इसलिए डेढ़ घंटा लिखने में लगे, आपने क्षणभर में जो सपना देखा है—अगर लिखिएगा तो आपको डेढ़ घंटा लगेगा । आप कहेंगे बड़ी अजीब बात है, देखा क्षणभरमें और लिखने में डेढ़ घंटा लग रहा है ! क्या कारण है ? क्या वजह है ? तीसरी बात इसलिए और आपको ख्यालमें दे दूँ—वजह यह है कि जब आप भीतर कोई घटना घटती है तो वह simultaneous घटती हैं। वह युगपत् घटती है । जैसे में आपको देख रहा हूँ तो मैं आपको इकट्ठा देखता हूँ एक—क्षणमें । लेकिन अगर आपकी गिनती करने आउं तो एक-एक की गिनती करूँगा। और सब linear हो जाएगा। एक रेखामें मुझे आपको गिनती करनी पड़ेगी । उसमे घंटों लग जाएँगे । आपको जब देखा तो मैंने सबको देखा, आपको, वह, एक क्षणमें एक-साथ, हो गया । लेकिन, जब गिना और कहीं आपके नाम लिखूँ रजिस्टर पर, तो बहुत घंटे लग जाएंगे । तो जब आप सपने को देखते हैं तो युगपत् घट जाता है । जब आप उसको लिखते हैं कागजपर, तब आप लम्बाई में लिखते हैं। युगपत् नहीं रह जाता । एक एक घटना लिखनी पड़ती है । तब वह लम्बी हो जाती है । समय ज्यादा ले लेती है । गीता जब लिखी गयी, या संजयने जब कही धृतराष्ट्र को कि ऐसी-ऐसी बात हो रही है वहाँ कृष्ण और अर्जुन के बीच, तब उसमें वख्त लगा होगा । उतना ही, जितना वख्त अभी गीता पढ़ते वख्त आपको लगेगा, उतना ही । लेकिन, कृष्ण और अर्जुन के बीच समय कितना लगा, यह तबतक आपको ख्यालमें आना मुश्किल है, जबतक आपको telepathy का थोड़ासा अनुभव न हो। हमारे हिसाब से समय का कोई मूल्य नहीं है वहाँ। इसलिए हो सकता है किसी भी योद्धा को पता भी न चला हो कि कृष्ण और अर्जुन के बीच क्या घटा ? एक क्षणमें हो गया हो । रथ जाके खड़ा हुआ हो, अर्जुन निढाल हो के बैठ गया हो, और एक क्षणमें यह सारी बात हो गयी हो, जो हुई है ।

एक छोटीसी कहानी, फिर हम दूसरा सवाल लें । सुना है मैंने-नारद के जीवन में एक कहानी है कि जगत् माया है-जगत् माया है, बड़े बड़े ज्ञानियों से नारदने सुना है । फिर वे स्वयं भगवान से जाके उन्होंने पूछा कि मेरी समझ में नहीं आता, जो है वह माया कैसे हो सकता है ?

उसके illusory उसके माया होने का क्या मतलब है ? धूप तपती है तेज, आकाश में सूरज है-दोपहर है । भगवान ने कहा कि मुझे बड़ी प्यास लगी है फिर पीछे समझाऊँ, थोड़ा पानी ले आओ । नारद पानी लेने गए । गाँव में प्रवेश किया । दोपहर है। लोग अपने घरों में सो रहे हैं । दरवाजे पे दस्तक दी । एक युवती बाहर आयी । नारद भूल गए भगवान को । कोई भी भूल जाए ! जिसको सदा याद किया जा सकना है, उसको याद करने की इतनी जल्दी भी क्या है ? भूल गए । और जब भगवान को ही भूल गए तो उनकी प्यास का क्या सवाल रहा ? किसलिए आए थे याद न रहा । लड़की को देखते रहे, मोहित हो गए । निवेदन किया कि मैं विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हूँ । पिता बाहर थे । उस लड़की ने कहा, पिता को आने दें, तबतक आप विश्राम करें । विश्राम किया, पिता आए । राजी हो गए । विवाह हो गया। फ़िर चली कहानी-- बच्चे हुए-चार छः बच्चे पैदा हो गए । काफी वख्त लगा । पिता मर भी गया । श्वसूर भी मर गए । बूढ़े हो गए नारद । पत्नी भी बूढ़ी हो गयी । बच्चों की लाइन लग गयी । बाढ़ आ गयी, बर्षा के दिन है, गाँव डूब गया । अब पत्नी अपने बच्चों को बचा के किसी तरह बाढ़ पार कर रहे हैं । बूढे हैं, शक्ति नहीं है पास । बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं । पत्नी को बचाते हैं, तो बच्चे बह जाते हैं, बच्चों को बचाते हैं तो लड़की बह जाती है । लड़के को पकड़ते हैं । बाढ़ है तेज और सबको बचाने में सब बह जाते हैं । नारद अकेले थके-माँदे तटपर जाके लगते हैं, आँख बन्द है, आँसू बह रहे हैं और कोई पूछता है कि उठो बड़ी देर लगा दी। सूरज ढलने के करीब हो गया । और हम प्यासे ही बैठे हैं । पानी अब तक नहीं लाए ? नारद ने आँख खोली, देखा भगवान खड़े हैं । उन्होंने कहा, अरे ! मैं तो भूल ही गया। मगर, इस बीच तो बहुत कुछ हो गया। आप कहते हैं-अभी सिर्फ़ सूरज ढल रहा है ! उन्होंने कहा, सूरज ही ढल रहा है । चारों तरफ़ देखा, बाढ़ का कोई पता नहीं है। कहाँ बच्चे-पत्नी ? भगवान ने कहा, कैसे बच्चे ? कैसी पत्नी ? कोई सपना तो नहीं देखते थे ? भगवान ने कहा कि तुम पूछते थे कि जो है वह माया कैसे हो सकता है । जो है वह माया नहीं है । लेकिन जो है उसे समय के माध्यम से देखने से वह सब माया हो जाता है । और जो है उसे समय के अतिरिक्त, समय का अतिक्रमण देखने से, वह सब सत्य हो जाता है । संसार समय के

माध्यम से देखा गया सत्य है। सत्य, समयशून्य माध्यम से देखा गया संसार है । यह जो घटना घटी है, यह घटना आन्तरिक है । और समय की परिधि के बाहर है ।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४१॥

अर्थ : तथा हे कृष्ण ! पापके अधिक बढ़ जाने से कुलकी स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं, और हे वार्ष्णेय ! स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर (प्रजा) उत्पन्न होती है ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

अर्थ : और वह वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरकमें ले जाने के लिये ही होता है । लोप हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले इनके पितरलोक भी गिर जाते हैं ।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

अर्थ : और इन वर्णसंकरकारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं ।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

अर्थ : तथा हे जनार्दन ! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्यों का अनन्त काल तक नरक में वास होता है । ऐसा हमने सुना है ।

अर्जुन, बहुत बहुत मार्गों से क्या क्या बुरा हो जाएगा-युद्ध में उसकी खोजबीन कर रहा है । उसके मनमें बहुत-बहुत बुराइयाँ दिखाई पर रही हैं । अभी ही नहीं, आगे भी । संतति कैसी होगी ? हो जायगी-वर्ण कैसे विकृत हो जाएँगे ? सनातन धर्म कैसे नष्ट हो जाएगा ? वो सब खोज कर रहा है । यह बहुत अजीब सा लगेगा कि उसे सबकी चिंता क्यों है ? लेकिन अगर हिरोशिमा के बाद बर्ट्रेन्ड रसेल, और पश्चिम के समस्त युद्धविरोधी

लोगों का साहित्य देखें तो हैरान होंगे, वे भी सब यही कह रहे हैं। बच्चे विकृत हो जाएँगे, व्यवस्था नष्ट हो जाएगी, सभ्यता नष्ट हो जाएगी, धर्म खो जाएगा, संस्कृति खो जाएगी। जो जो अर्जुन को ख्याल आ रहा है, वह वह ख्याल, हिरोशिमा के बाद सारी दुनिया के शांतवादी लोगों को आ रहा है। शांतिवादी– शांतिवादी कह रहा हूँ। शांतिवादी युद्ध से क्या क्या बुरा हो जाएगा उसकी तलाश में लगता है। लेकिन उसकी सारी तलाश, जैसा मैंने कहा, उसके भीतर पलायन की जो वृति पैदा हो रही है, उसके समर्थन में कारण खोजने की होती है। हम वही खोज लेते हैं, जो हम करना चाहते हैं। लेकिन दिखाई ऐसा पड़ता है कि जो होना चाहिए वही हम कर रहे हैं। हम जो करना चाहते हैं हम उसकी ही दलीलें खोज लेते हैं। औंर जिंदगी में सबकी दलीलों के लिए सुविधा है। जो आदमी जो करना चाहता है उसके लिए सारे पक्ष की दलीलें खोज लेता है।

एक आदमीने अमरीका में एक किताब लिखी है-कि तेरह तारीख, या तेरह का आँकड़ा, १३ की संख्या खतरनाक है। बड़ी किताब लिखी है। और सब खोज लिया है उसने। १३ वीं मंजिलपर से कौन आदमी गिरके मरा? वो आज अमरीका के कई होटलों में १३ वीं मंजिल ही नहीं है उस किताब के प्रभाव से। क्योंकि तेरहवीं पर कोई ठहरने को राजी नहीं। बारहवीं के बाद सीधी चौदहवीं मंजिल आ जाती है। तेरह तारीख को अस्पताल में जो लोग भर्ती होते हैं उनमें से कितने मर जाते हैं? १३ तारीख को एक्सीडेन्टस होते हैं सड़क पर? १३ तारीख को कितने लोगों को केन्सर होता है? १३ तारीख को कितने हवाई जहाज गिरते हैं? १३ तारीख को कितनी मोटरें टकराती हैं? १३ तारीख को क्या क्या उपद्रव होता है-उसने सब इकट्ठा कर लिया है। १२ को भी होता है, ११ को भी होता है-उतना ही। लेकिन वह उसने छोड़ दिया। १३ का सब इकट्ठा कर लिया। कोई अगर ११ तारीख के खिलाफ हो, तो ११ तारीख के सब इकट्ठा कर लेगा। अगर कोई १३ तारीख के पक्ष में हो तो तेरह तारीख को बच्चे भी पैदा होते हैं। १३ तारीख को हवाई जहाज नहीं भी गिरते हैं। १३ तारीख को अच्छी घटनाएँ भी घटती हैं, विवाह भी होते हैं। १३ तारीख को मित्रता भी बनती है। १३ तारीख को विजयोत्सव भी होते हैं। १३ तारीख को भी सब अच्छा भी होता है। आदमी का चित्त उसे खोज लेता है जो वह चाहता है। अब जो वो पलायन चाहता है

अर्जुन, तो वह सब खोज रहा है। कल तक उसने ये बात नहीं कही थी कभी भी। कल तक उसे आने वाली संतति को क्या होगा--कोई मतलब न था। इस युद्ध के आखिरी क्षण तक, उसे कभी इन सब बातों का ख्याल न आया। आज सब ख्याल आ रहा है। आज उसके मन को पलायन पकड़ रहा है। तो वह सब दलीलें खोज रहा है। अब यह बड़े मजे की बात है कि कुल मामला इतना है कि वह अपनों को मारने से भयभीत हो रहा है। लेकिन दलीलें दूसरी खोज रहा है। वह सब दलीलें खोज रहा है। मामला कुल इतना है कि वह ममत्त्व से पीड़ित है-मोह से पीडित है। अपनों को मारने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। इतनी सी बात है। लेकिन इसके आसपास वो बड़ा जाल, फिलासफी खड़ी कर रहा है। हम सब करते हैं। छोटी सी बात जो होती है अक्सर ऐसा होता है वह बात हम छोड़ ही देते हैं जो होनी है। उसके आसपास जो जाल हम खड़ा करते हैं वह बहुत दूसरा होता है। एक आदमी को किसीको मारना है तो वह बहाने खोज लेता है। एक आदमी को क्रोध करना है तो वह बहाने खोज लेता है। एक आदमी को भागना है तो बहाने खोज लेता है। आदमी को जो करना है वह पहले आता है और बहाने खोजना पीछे आता है। वह कृष्ण देख रहे हैं और हँस रहे हैं। वे समझ रहे हैं कि ये सब ये जो दलीलें वह दे रहा है ये चालबाजी की दलीलें हैं। ये दलीलें वास्तविक नहीं हैं। ये सही नहीं हैं ये उसकी अपनी दृष्टि नहीं है। क्योंकि उसने कभी आज तक किसीको मारते वख्त नहीं सोंचा। कोई ऐसा पहला मौका नहीं कि वह मार रहा है। वह निष्णात योद्धा है। मारना ही उसकी जिंदगीभर का अनुभव और कुशलता है। मारना ही उसका बल है। तलवार ही उसका हाथ है। धनुष-बाण ही उसकी आत्मा है। ऐसा आदमी नहीं है कि कोई तराजू पकड़े बैठा रहा हो और अचानक युद्ध में लाके खड़ा कर दिया है। इसलिए उसकी बातें सुनकर कृष्ण जरूर हँस रहे होंगे। वे जरूर देख रहे होंगे कि आदमी कितना चालाक है। सब आदमी चालाक हैं। जो कारण होता है उसे हम भुलाते हैं और जो कारण नहीं होता है उसके लिए हम दलीलें इकट्ठी करते हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि खुद को ही दलीलें देके हम समझा लेते हैं और मूल कारण छूट जाते हैं। लेकिन कृष्ण चाहेंगे कि उसे मूल कारण ख्याल में आ जाय। क्योंकि मूल कारण अगर ख्याल में हो तो समझ पैदा हो सकती है। और अगर मूल

कारण छिपा दिया जाय और दूसरे false reasons–झूठे कारण इकट्ठे कर लिये । अर्जुन को क्या मतलब है कि आगे क्या होगा ? धर्मकी उन्हें कब चिंता थी कि धर्म विनष्ट हो जायगा ? कब उसने फिक्र की थी कि ब्राह्मण कि कहीं कुल विकृत न हो जाय ? कब उसने फिक्र की थी इन सब बातों की ? कोई चिंता न थी कभी । आज अचानक सब चिंताएँ उसके मनपर उतर आयी । यह समझने जैसा है कि ये सारी चिन्ताएं क्यों उतर रही हैं ? क्योंकि वह भागना चाहता है । भागना चाहता है तो ऐसा नहीं दिखाएगा कि कायर है । वजहसे भागेगा । 'रिझनेबल' होगा उसका भागना । कहेगा कि इतने कारण थे इसलिए भागता हूँ । अगर बिना कारण भागेगा तो दुनिया हंसेगी । यही उसकी चालाकी है। यही हम सब की चालाकी है हम जो भी कर रहे हैं उसके लिए पहले कारणका जाल खडा करेंगे । जैसे मकानको बनाते है तो एक structure खड़ा करते हैं । ऐसे हम एक जाल खड़ा करेंगे। वह जाल हम दिखाएंगे–कि यह ठीक है । लेकिन मूल कारण बिलकुल और होगा । अगर कृष्णको यह साफ दिखाई पड़ जाय कि अर्जुन जो कह रहा है वही कारण है तो मैं नहीं मानता कि वह धर्मका विनाश करवाना चाहेंगे । मैं नहीं मानता कि वह चाहेंगे कि बच्चे विकृत हो जायें । मैं नहीं सोचता कि वे चाहेंगे कि संस्कृति, सनातन धर्म नष्ट हो जाये । नहीं वे चाहेंगे । लेकिन यह कारण नहीं है । ये false substitutes हैं । ये झूठे परिपूरक कारण हैं इसलिए, कृष्ण इनको गिराने की कोशिश करेंगे । इनको काटनेकी कोशिश करेंगे। वे अर्जुन को वहाँ लाएंगे जहाँ मूल कारण है। क्योंकि मूल कारणसे लड़ा जा सकता है । लेकिन, झूठे कारणोंसे लड़ा नहीं जा सकता । और इसलिए हम मूल को छिपा लेते हैं और झूठे कारणोंमें जीतें हैं । यह अर्जुनकी मनोदशा ठीकसे पहचान लेनी जरूरी है। ये reason की cunningness है । यह बुद्धिकी चालाकी है । सीधा नहीं कहता कि मैं भाग जाना चाहता हूं । नहीं होता मन अपने मारनेका । यह तो आत्मघात है । मैं जा रहा हूँ–सीधा नहीं कहता। दुनियामें कोई आदमी सीधा नहीं कहता । जो आदमी सीधा कहता है उसकी जिंदगीमें क्रांति हो जाती है । जो इरछा–तिरछा कहता है उसकी जिंदगीमें कभी क्रांति नहीं होती। वह जिसको कहते हैं झाड़ीके आसपास पीटना–beating about the bush बस ऐसे वह पीटेगा पूरे वख्त–झाड़ी बचाएगा, आसपास पिटाई करेगा । अपनेको बचाएगा–और हजार हजार कारण खोजेगा । छोटी सी बात

है सीधी उसकी–हिम्मत खो रहीं है । ममत्वके साथ हिम्मत जा रही है । उतनी सीधी बात नहीं कहेगा । और सारी बातें इकठ्ठी कर रहा है । वे उनके कारण सुनने और समझने जैसे हैं। हमारा चित्त भी ऐसा कहता है । इसलिए समझना उपयोगी है ।

प्रश्न : आचार्यश्री, अर्जुनके चित्तने—जो कुछ भी कारण बताये, उसमें पुण्य-धर्म का क्षय होने से, दूषित स्त्रियोंसे वर्णसंकर प्रजा का जन्म होता है। जो प्रजा पिण्ड और तर्पण क्रिया नहीं करती है उससे उनके पितृगण नर्कमें जाते हैं । तो क्या पितृगण पिण्ड-दान नहीं देने पर भूखें मरते हैं ? या यह सब क्या अर्जुनके चित्तकी भ्रांति ही है ?

उत्तर : नहीं, अर्जुनके कारण सब अत्यंत उपरी–अत्यन्त व्यर्थ हैं । कोई पितृगण आपके पिण्डसे बंध कर नहीं जीते हैं। और अगर आपके पिण्ड–दानसे किन्हीं जा चुके पितृगणोंकी आगेकी यात्रा बिगड़ती हो–तब तो पिण्डदान बड़ी खतरनाक बात है । आत्माएं अपने ही, अपने ही भीतरसे अपनी यात्रा पर निकलती हैं । आपने उनके पीछे क्या किया और क्या नहीं किया इससे उनकी यात्राका कोई भी संबन्ध नहीं हैं। लेकिन पुरोहितोंका एक जाल है जगतमें और पुरोहितोंका जाल जन्मसे लेकर मृत्यतक आदमीको कसता है । मरनेके बाद भी कसता है । और बिना आदमीको भयभीत किए आदमीका शोषण नहीं किया जा सकता । भय ही शोषणका आधार है । तो बेटेका शोषण किया जा सकता है मरे हुए बापके लिए भी भय दिखाकर ।

अर्जुन वे सब बातें कर रहा है–जो उसने सुनी होगी। वे सब उसके आसपास हवामें रही होगी । तब थी तब तो आश्चर्य नहीं । अभी भी है । पांच हजार साल पहले अर्जुनने सुनी होगी, कोई आश्चर्यकी बात नहीं,–अभी भी हैं । अर्जुन जो कह रहाहै, उसने जो सुना होगा हवामें–जो पुरोहित समझाते रहे होंगे आसपास–वही कह रहा है। उसे कोई मतलब नहीं है । वह तो सब दलीलें इकट्ठी, परेड करवा रहा है कृष्णके सामने–कि साबित हो जाय कि वह भाग रहा है तो भागना ही धर्म है । उचित है । वह इसलिए सारी ही दलीलें ला रहा है । लेकिन इनमें कोई भी सत्य नहीं है । और नहीं कोई वर्णसंकरसे कोई विकृति होती है । उस दिन ख्याल था । अभी भी है । करपात्री और शंकराचार्यसे पूछिए तो यही ख्याल है । कुछ लोग

यह ख्याल बदलते हीं नहीं–सारी दुनियामें सब बदल जाय । कुछ लोग ख्यालको ऐसा पकड़ते हैं कि ख्यालके नीचेसे सारी जिंदगी निकल जाती है । लेकिन मुर्दा ख्यालको पकड़े रह जाते हैं । cross breeding–जिसको वर्णसंकर कह रहा हैं अर्जुन श्रेष्ठतम breeding है । क्रोस ब्रिडिंग से संभावना श्रेष्ठतर होने की है । बीजमें आप पूरी तरह उपयोग कर रहे हैं । उस वख्त आप ख्यालमें नहीं लाते कि अर्जुनके खिलाफ जा रहे हैं । जानवरोंमें उपयोग कर रहे हैं । आदमीमें अभी उपयोग नहीं कर रहे हैं । इसलिए आज आदमीकी breeding जानवरोंसे भी पिछड़ी हुई 'ब्रिडिंग' है । आज हम जितने अच्छे कुत्ते पैदा कर लेते हैं कुत्तोंमें उतना अच्छा आदमी, आदमी ही पैदा नहीं कर पाते । आदमीकी अभी भी संततिकी व्यवस्था एकदम अवैज्ञानिक है । अर्जुनके वख्तमें तो रही ही होगी । आज भी है । आजभी आदमीसे श्रेष्ठतर आदमी मन और शरीरकी दृष्टिसे ज्यादा आयुष्यवाला, ज्यादा प्रतिभाशाली, पैदा हो सके–इस तरफ हमारा कोई ख्याल नहीं है । बीज हम फिक्र करते हैं । बीज अच्छेसे अच्छा होता जा रहा है, फलोंका, फूलोंका, गेहूंका । पशुओंमें हम अच्छेसे अच्छे पशु पैदा करनेकी फिक्र करते हैं । आदमियोंमें अभी भी फिक्र नहीं है । लेकिन पुराने वख्त ऐसा ख्याल था–कि अगर दूसरी जातिसे मिलना हुआ तो जो बच्चा पैदा हुआ वर्णसंकर हो जाएगा । सच तो यह है–कि इस जगतमें जितनी भी प्रतिभाशाली जातियां हैं वे सब वर्णसंकर है और जितनी शुद्ध जातियां हैं वे सब पिछड़ गयी हैं । निग्रो बिलकुल शुद्ध हैं । अफ्रीकाके जंगलोंमें रहने वाले आदमी बिल्कुल शुद्ध हैं । हिन्दुस्तानके आदिवासी बिल्कुल शुद्ध हैं । जितनी विकासमान संस्कृतियां हैं, सभ्यताएं हैं वे सभी वर्णसंकर हैं । असलमें जैसे दो नदियां मिलके ज्यादा समृद्ध हो जाती हैं–ऐसे जीवनकी दो विभिन्न धाराएं भी मिलके समृद्ध हो जाती हैं । अगर अर्जुन ठीक है, तब तो बहन और भाईकी शादी करवा देनी चाहिए । उससे बिल्कुल शुद्ध बच्चे पैदा होंगे । लेकिन बहन और भाईकी शादीसे शुद्ध बच्चा पैदा नहीं होता । सिर्फ रुग्ण बच्चा पैदा होता है । बहन और भाईको हम बचाते हैं । जो बुद्धिमान हैं–वे चचेरे बहन और भाईको भी बचाते हैं । जो उनसे भी ज्यादा बुद्धिमान हैं वे अपनी जातिमें शादी कभी न करेंगे । जो उनसे भी ज्योदा बुद्धिमान हैं वे अपने देशको भी बचाएंगे और आज नहीं कल अगर किसी ग्रहपर, उपग्रह पर हमने मनुष्य खोज लिये तो जो बहुत बुद्धिमान है वह

inter-planetory-cross-breeding की फिक्र करेंगे । लेकिन वो अर्जुन तो सिर्फ परेड करवा रहा है । वह तो यह कह रहा है कि ये–ये उसने सुना है । ऐसी–ऐसी हानि हो जाएगी । इसलिए मुझे भागने दो । न उसे क्रोस ब्रिडिंग से मतलब है न कोई जानकार है । उसकी जानकारी और कुशलता–उसमें शक्ति नहीं है । हाँ उसके सुने हुए ख्याल हैं । हाँ–चारो तरफ हवाओंमें ये बातें थीं, आज भी हैं । उस समय थीं, यह तो बिल्कुल स्वाभाविक लगता है । क्योंकि मनुष्यकी संततिका जन्मशास्त्र बहुत विकसित नहीं था । आज तो बहुत विकसित है । लेकिन आज भी इतने विकसित संततिशास्त्रके साथ हमारा मस्तिष्क इतना विकसित नहीं है–कि हम उसे सह सकें, या उस संबन्धमें सोच सके । क्योंकि अपनी जातिमें शादी करना बहुत दूरकी अपनी बहनसे ही शादी करना हैं । जरा फासला है । दस–पाँच पीढ़ियोंका फासला होगा । अपनी ही जातिमें शादी करना दस पाँच पीढ़ियोंके पीछे, एक ही पिताकी संतति हैं वो । सौ पीढ़ी पीछे होंगी, बहुत दूर जाएँगे । लेकिन एक जातिमें सब बहन–भाई ही हैं । और ज्यादा पीछे जाएँगे तो एक महाजातिमें भी सब बहन–भाई हैं । जितने दूर जाएँ, जितना विभिन्न बीजारोपण संयुक्त हो, उतनी विभिन्न समृद्धियां, उतने विभिन्न संस्कार, उतने विभिन्न जातियोंके द्वारा अनुभव किए गए सारा का सारा, हजारों सालका इतिहास–genetic उस अणुमें इकठ्ठा होकर उस व्यक्तिको मिल जाता है । जितने दूरसे ये दो धाराएं यहाँ आएं, उतने विलक्षण व्यक्तिके पैदा होनेकी संभावना है । वर्णसंकर बहुत गाली थी अर्जुनके वख्तमें । हिन्दुस्तानमें अभी भी काशी में गाली है । लेकिन अब सारे जगतके बुद्धिमान व्यक्ति इस बातके लिए राजी हैं कि जितने दूरका वर्ण हो, जितनी संकरता हो, उतने ही श्रेष्ठतम व्यक्तिको जन्म दिया जा सकता है । लेकिन, अर्जुनको इससे लेना देना नहीं है । अर्जुन इस पर, कोई वक्तव्य नहीं दे रहा है । वह तो सिर्फ दलीलें इकट्ठी कर रहा है ।

प्रश्न : आचार्यजी, नर्क या स्वर्ग ऐसे भी स्थानविशेष हैं ? ऐसा लगता है कि पाप और पुण्य एवं नर्क और स्वर्ग की कल्पना व्यक्ति को भयभीत या प्रोत्साहित करने के हेतु की गई है । आप सहमत हैं इससे ?

उत्तर : नर्क और स्वर्ग भौगोलिक स्थान नहीं है । लेकिन मानसिक दशाएं जरुर हैं ये ! लेकिन, आदमी का चिंतन सदा ही चीजों को चित्रोंमें

रूपांतरित करता है। आदमी बिना चित्रों के नहीं सोच पाता । आदमी को सोचने में चित्र बड़े सहयोगी हो जाते हैं । हम सबने देखा है-अभी भी घर में टंगी हुओ है, भारत माता की फोट्ट । वह तो कुछ बुद्धिमान हमारे मुल्क में पता नहीं क्यों नहीं हैं-कि भारत माता की खोज पर नहीं निकलते । फोट्ट तो घरों में लटकी हुओ है भारत माता की । लेकिन भारत माता कहीं खोजने से मिलनेवाली नहीं हैं । लेकिन हजार दो हजार साल बाद अगर कोई कहेगा कि भारत माता नहीं थी तो लोग कहेंगे कि बिल्कुल गलत कहते हैं । लोग कहेंगे देखो, गांधीजी इशारा कर रहे हैं फोट्ट में भारत माता की तरफ ! गांधीजी गलती कर सकते हैं ? भारत माता जरूर रही होगी या तो कहीं गुहा कंदराओं में छिप गयी है, हमारे पाप की वजह से । आदमी जो समझाना चाहेगा, उसे चित्रों में हीं रूपांतरित करता है । असलमें जितने हम पुराने लौटेंगे उतने pictorial language बढ़ती जाती है । असल में दुनिया की पुरानी भाषाएं चित्रात्मक हैं । जैसे, चीनी अभी भी चित्रों की भाषा है । अभी भी शब्द नहीं है, वर्ण नहीं हैं, चित्र हैं। चित्रों में ही सारा काम करना पड़ता है । इसलिये चीनी सिखना बहुत मुश्किल मामला हो जाता है । साधारण भी कोई सीखे तो १०-१५ साल तो मेहनत करनी ही पड़े । क्योंकि कम से कम १०-२० हजार चित्र तो उसे याद होने ही चाहिए। अब चीनी में अगर झगड़ा लिखना है तो एक झाड बनाके उसके नीचे दो औरतें बिठा लेनी पड़ती हैं । तब पता चलता है कि झगड़ा है । बिल्कुल पक्का झगड़ा तो है ही। एक झाड़ के नीचे दो औरतें ! इससे बड़ा झगड़ा और क्या हो सकता है ? सारी दुनिया की-जितने हम पीछे लौटेंगे उतनी चिंतना pictorial होगी । अभी भी हम सपना जब देखते हैं तो उसमें शब्द नहीं होते-चित्र होते हैं । क्योंकि सपना जो है वो primitive-बहुत पुराना है, नया नहीं है । बीसवीं सदी में भी, २० वीं सदी का सपना देखना मुश्किल है । सपना तो हम देखते हैं कोई लाख साल पुराना । उसका ढंग लाख साल पुराना होता है । इसलिए बच्चों की किताब में चित्र ज्यादा रखने पड़ते हैं । और शब्द कम रखने पड़ते हैं । क्योंकि बच्चा शब्दों से नहीं समझता । चित्रों से समझेगा । तभी 'ग' गणेशजी का । नाहक गणेशजीको फंसाना पड़ता है ! गणेशजी का कोई लेनादेना नहीं है 'ग' का । लेकिन बच्चा गणेशजीको समझेगा फिर 'ग' को समझेगा । बच्चा primitive है। तो जितना हम पीछे

लौटेंगे, उतना सारे मानसिक तत्त्व हमें भौगौलिक बनाने पड़े । स्वर्ग, चित्त की एक दशा है । जब सब सुखपूर्ण है, सब शांत हैं, सब फूल खिला है, सब संगीत से भरा है । लेकिन उसे कैसा कहे ? इसे ऊपर रखना पडे । नर्क है-जहां कि सब दुःख है, पीड़ा है-जलन है । नीचे रखना पड़ा । नीचे और उपर values बन गयी । उपर वो हैं जो श्रेष्ठ हैं । नीचे वह है जो बुरा है-निकृष्ट है। फिर, जलन-दुःख-पीड़ा-और आग की लपटें बनानी पड़ी । स्वर्ग-तो वहाँ शीतल शांत air-conditioning की व्यवस्था करनी पड़ी । लेकिन ये सब चित्र हैं । लेकिन जिद्द पीछे पैदा होती है । जिद्द पुरोहित पैदा करवाता है । वह कहता है कि नहीं, चित्र नहीं है । ये तो स्थान हैं । अब वो मुश्किल में पड़ेगा । क्योंकि जब ख्रुश्चेव का आदमी पहली दफा अन्तरिक्षमें पहुँचा तो ख्रुश्चेव ने रेडियो पर कहा कि मेरे आदमी चाँद पर चक्कर लगा लिए । कोई स्वग दिखाई नहीं पड़ता । अब यह पुरोहित से झगड़ा है ख्रुश्चेव का । ख्रुश्चेव से पुरोहित को हारना पडेगा । क्योंकि पुरोहित दावा ही गलत कर रहा है। कहीं कोई उपर स्वर्ग नहीं है । कहीं कोई नीचे नर्क नहीं है । हां, लेकिन सुख की अवस्था उपर की अवस्था है । नर्क की अवस्था-दुःख की अवस्था नीचे की अवस्था है । और यह नीचे-उपर को इतना भौगौलिक बनाने का कारण है । जब आप सुखी होंगे तब आपको लगेगा जैसे आप जमीन से ऊपर उठ गए और जब आप दुःखी होंगे तब ऐसा लगेगा कि जमीन में गड़ गए । वह बहुत मानसिक feeling है । जब आप दुःखी होंगे तो सब तरफ ऐसा लगेगा अंधेरा छा गया है । जब सुखी होंगे तो सब तरफ लगेगा कि आलोक छा गया है। फिलिंग' है । भाव है, अनुभव है भीतर । जब दुःखी होंगे तो ऐसा लगेगा जैसे जल रहे हैं । जैसे कोई भीतर से आग जल रही है । और जब आनन्दित होंगे तो भीतर फूल खिलने लगेंगे। वे भीतरी भाव हैं। लेकिन कवि उनको कैसे बनाएँ ? चित्रकार उनको कैसे समझाएं ? धर्मगुरु उन्हें कैसे लोगों के सामने उपस्थित करें ? तो उसने बनाया उनका-उपर गया स्वर्ग, नीचे गया नर्क । लेकिन अब वह भाषा बेइमानी हो गयी। अब आदमी उस भाषा के पार चला गया । भाषा बदलनी पड़ेगी । तो मैं कहता हूँ geographical नहीं-भौगौलिक नहीं, psychological है। स्वर्ग और नर्क हैं । और ऐसा भी नहीं है कि आप मरके स्वर्ग चले जाएगें, और नर्क चले जाएंगे। आप २४ घन्टेमें कई बार स्वर्ग और नर्क में यात्रा करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि कोई इकट्ठा एक दफा-wholesale बिल्कुल फुटकर

है मामला । ये चौवीस घंटे का काम है । जब आप क्रोध में होते हैं तो
फौरन नर्क में होते हैं जब आप प्रेम में होते हैं तो स्वर्ग में उठ
जाते हैं । पूरे वख्त आपका मन नीचे से उपर हो रहा है । पूरे
वख्त आप सीढ़ियाँ उतर रहे हैं अंधेरे की ओर आलोक की । ऐसा
कोई इकठ्ठा नहीं है । लेकिन जो आदमी जिन्दगी भर नर्क में गुजारता हो
उसकी आगे की यात्रा भी अन्धेरे की तरफ ही हो रही है । जो आदमी
जिन्दगी भर आलोकमें गुजारता हो उसके आगेकी यात्रा भी आलोक
हो रही है लेकिन यह सब 'मेटाफर' हैं, प्रतीक है । और सब चित्र हैं ।
अर्जुन का मतलब नहीं है इनसे उसको कुछ मतलब नहीं है। इनसे उनको कुछ
पता भी नहीं है । वह तो यह कह रहा है बेचारा कि ऐसी ऐसी मुसीबतें
आएगी ये सब मर जाएँगे । बेटे नहीं बचेंगे । पिण्ड नहीं चढ़ाया जाएगा।
तो पितृ आत्मायें कैसे स्वर्ग जाएँगे ? विधवायें रह जायगी, पति नहीं बचेंगे ।
पुरुष मर जाएँगे, भ्रष्टाचार फैलेगा । पुरुष कम रह जाएँगे, स्त्रियां ज्यादा
होंगी फिर भ्रष्टाचार फैल जाएगा । स्त्रियां कैसे होंगी फिर ? फिर उनसे
गलत बच्चे पैदा होंगे । नाजायज संतान होगी । और सब दुनिया गड़बड़
हो जायगी । यह अर्जुन बेचारा सारी दुनिया को बचाने के लिए-पितृ आत्मा
स्वर्ग जायें इसलिए, उनके बेटे पिण्डदान करें इसलिए, कोई विधवा न हो जाय
इसलिए, वर्णसंकरता न फैल जाय, विनाश न हो जाय-इतने बडे. उपद्रव
इसलिये कि यह आदमी सिर्फ भागना चाहता है । इतनी सी छोटी बात कि
कृष्ण आज्ञा दे दें । लेकिन इसमें भी वह सेंकशन मांगता है इसमें भी वह
चाह रहा है कि कृष्ण कह दे कि अर्जुन ! तू बिल्कुल ठीक कहता है ताकि
कल जिम्मेवारी उसकी अपनी न रह जाय। तब वह कल कह सके कि कृष्ण
तुमने ही मुझसे कहा था इसलिए मैं गया था। असलमें इतनी भी हिम्मत नहीं
है उसकी कि वो responsibility अपने ऊपर ले ले कि कह दे कि
मैं जाता हूँ। क्यों कि तब उसे दूसरा मन इसका कहता कायरता होगी ।
यह तो उसके खून में नहीं है । यह भागना उसके वश की बात नहीं है।
क्षत्रिय है । पीठ दिखाना बेहतर नहीं है । यह भी उसके भीतर बैठा है।
इसलिए वह कहता है कृष्ण अगर साक्षी दे दें और कह दें कि ठीक, तू
उचित कहता है अर्जुन! वह तो कृष्ण की जगह अगर कोई साधारण
धातु का बना हुआ, कोई पंडित पुरोहित होता तो कह देता कि बिल्कुल
ठीक कहता अर्जुन ! शास्त्र में ऐसा ही तो लिखा है । तो अर्जुन भाग
गया होता। वह भागने का रास्ता खोज रहा है। लेकिन उसे पता नहीं कि
जिससे वह बात कर रहा है उस आदमी को धोखा देना मुश्किल है । वह

अर्जुन को पैना, गहरे देख रहा है । वह जानता है, वह क्षत्रिय है । और
क्षत्रिय होना ही उसकी नियति है । वही उसकी destiny है । वही सब
बातें ऐसी कर रहा है ब्राह्मणों जैसी । ब्राह्मण वह है नहीं । बातें ब्राह्मणों
जैसी कर रहा है । ये दलीलें वह ब्राह्मणों की दे रहा है । है वह ब्राह्मण
नहीं । है वह क्षत्रिय । तलवार के अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता । एक
ही शास्त्र है उसका । असलमें अर्जुन जैसा क्षत्रिय दुनियामें खोजना मुश्किल है।

मेरे एक मित्र जापानसे आए तो किसीने उन्हें एक मूर्ति भेंट कर दी ।
उस मूर्ति के एक हाथमें तलवार है, और तलवारकी चमक है चेहरेपर । और
दूसरे हाथमें एक दिया है और दिए की ज्योति की चमक दूसरे हिस्सेपर
चेहरेके । जिस तरफ दिया है, उस तरफ से मूर्ति को देखें । तो लगता है-
चेहरा बुद्धका है । और जिस तरफ तलवार है उसतरफ से देखें तो लगता
है चेहरा अर्जुन का है । वह मुझसे पूछने लगे कि यह क्या मामला है ?
तो मैंने कहा कि अगर बुद्ध के मुकाबले और बुद्ध से ज्यादा बड़ा ब्राह्मण
खोजना मुश्किल है । शुद्ध ब्राह्मण। तो अर्जुन से बड़ा क्षत्रिय भी खोजना
मुश्किल है । और यह जो मूर्ति है जापान में 'समुराइ' सैनिककी मूर्ति है ।
समुराइके लिए नियम है कि उसके पास बुद्ध जैसी शान्ति, और अर्जुन जैसी
क्षमता चाहिए । तभी वह सैनिक है । लड़ने की हिम्मत अर्जुन जैसी और
लड़ते समय शांति बुद्ध जैसी। बड़ी Impossible की मांग है, बड़े असंभव
की मांग है । लेकिन अर्जुन के पास बुद्ध जैसा कुछ भी नहीं है । उसकी
शांति सिर्फ बचाव है । । उसकी शांति की बातें सिर्फ पलायनवादी हैं ।
वह शांतिकी बातें करके भी पछतायेगा । कल अर्जुन फिर कृष्ण को पकड़
लेगा कि तुमने क्यों मुझे सहारा दिया ? बदनामी हो गयी । कुलकी प्रतिष्ठा
चली गयी । फिर २५ दलीलें ले आएगा । जैसी अभी २५ दलीलें लाया है ।
भागनेके पक्षमें । कल २५ दलीलें लाएगा—और कृष्णको कहेगा कि तुम ही
जिम्मेवार हो, तुमने ही मुझे उलझा दिया । और भगा दिया । अब सब बद-
नामी हो गयी है । अब कौन जिम्मा ले इसका । इसलिए कृष्ण इसको इतने
सस्तेमें छोड़ नहीं सकते । इतने सस्ते में छोड़नेकी बात भी नहीं है । वह
आदमी दोहरे दिमाग में है । उसे एक दिमाग पर लाना एकदम आवश्यक है।
फिर वह एक दिमागसे जो भी कहें-कृष्ण की उससे सहमति हो सकती है ।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ [४५]

अर्थ : अहो ! शोक है कि, हमलोग महान् पाप करनेको तैयार हुए हैं, जो कि, राज्य और सुखके लोभसे अपने कुलको मारने के लिए उद्यत हुए हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ [४६]

अर्थ : यदि मुझ शस्त्ररहित, न सामना करनेवाले को शस्त्रधारी धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मारें तो वह मारना भी मेरे लिये अति कल्याणकारक होगा ।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ [४७]

अर्थ : संजय बोला कि, रणभूमि में शोक से उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कह कर बाणसहित धनुष को त्याग कर रथके पिछले भाग में बैठ गया ।

प्रथम अध्याय संपूर्ण ।

गीता प्रवचन

अध्याय २–सांख्ययोग

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

अर्थ : संजय बोला कि, करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले खेदयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान् मधुसूदनने यह वचन कहा ।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ! ॥२॥

अर्थ : हे अर्जुन ! तुमको इस विषमस्थल में यह अज्ञान किस हेतुसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि यह न तो आर्य पुरुषोंसे आचरण किया गया है, न कीर्ति प्रदान करने वाला है ।

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३॥

अर्थ : इसलिये हे अर्जुन ! कायरता को मत प्राप्त हो, यह तेरे लिए योग्य नहीं है, हे परंतप ! हृदयको दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो ।

आचार्यश्री :

संजयने अर्जुन के लिये "दया से भरा हुआ, दया के आँसू आँख में लिए" ऐसा कहा है। दया को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। संजय ने नहीं कहा–"करुणा से भरा हुआ, कहा है दया से भरा हुआ"–साधारणतः शब्दकोषमें दया और करुणा पर्यायवाची दिखाई पड़ते हैं। साधारणतः हम भी उन दोनों शब्दोंका एक सा प्रयोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उसमें बड़ी भ्रांति पैदा होती है। दया का अर्थ है परिस्थितिजन्य, और करुणाका अर्थ है मनःस्थितिजन्य। उनमें बुनियादी फर्क है। करुणा का अर्थ है जिसके हृदय में करुणा है। बाहर की परिस्थिति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। करुणावान व्यक्ति अकेले में बैठा हो तो भी उसके हृदयसे करुणा बहती रहेगी। जैसे निर्जन में फूल खिला हो तो भी सुगन्ध उड़ती रहेगी। राहपर निकलनेवालेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। राहसे कोई निकलता है या नहीं निकलता है-फूल की सुगन्ध को इससे कुछ लेना देना नहीं है। नहीं कोई निकलता तो निर्जन पर भी फूल की सुगन्ध उड़ती है। कोई निकलता है तो उसे सुगन्ध मिल जाती है यह दूसरी बात है। फूल उसके लिए सुगन्धित नहीं होता है।

करुणा व्यक्ति की अंतश्चेतना का स्रोत है। वहाँ सुगन्ध की भांति करुणा उठती है। इसलिए बुद्ध को या महावीर को दयावान कहना गलत है। वे करुणावान हैं। महाकारुणिक हैं। अर्जुन को संजय कहता है– 'दया से भरा हुआ'। दया सिर्फ उनमें पैदा होती है जिनमें करुणा नहीं होती। दया सिर्फ उनमें पैदा होती है जिनके भीतर हृदयमें करुणा नहीं होती। दया परिस्थिति के दबाव से पैदा होती है। करुणा हृदयके विकाससे पैदा होती है। राह पर एक भिखारी को देखकर जो आपके भीतर पैदा होता है वह दया है। वह करुणा नहीं है। और तब एक बात और समझ लेनी चाहिए कि दया अहंकार को भरती है और करुणा अहंकार को विगलित करती है। करुणा सिर्फ उसमें ही पैदा होती है जिसमें अहंकार न हो। दया भी अहंकार को ही परिपुष्ट करने का माध्यम है। अच्छा माध्यम है। सज्जनों का माध्यम है। लेकिन माध्यम अहंकारको ही पुष्ट करने वाला है। जब आप किसी को दान देते हैं–तब आपके भीतर जो रस उपलब्ध होता है देनेवाले का; देनेवाले की स्थितिमें होने का, भिखारी को देखकर जो

दया पैदा होती है–उस क्षण में अगर भीतर खोजेंगे तो अहंकार का स्वर भी बजता होता है।

करुणावान चाहेगा, पृथ्वीपर कोई भिखारी न रहे। दयावान चाहेगा– भिखारी रहे। अन्यथा दयावान को बड़ी कठिनाई होगी। दया पर खड़े हुए समाज भिखारी को नष्ट नहीं करते, पोषित करते हैं। करुणा पर कोई समाज खड़ा होगा तो भिखारी को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। नहीं होना चाहिए।

अर्जुन के मन में जो हुआ है—वह दया है। करुणा होती तो क्रांति हो जाती। इसे इसलिए ठीक से समझ लेना जरूरी है कि कृष्ण जो उत्तर दे रहे हैं-वे ध्यान में रखने योग्य है। तत्काल कृष्ण उससे जो कह रहे हैं– वह सिर्फ उसके अहंकार की बात कह रहे हैं। वे उससे कह रहे हैं– "अनार्योंके योग्य"। वह दूसरा सूत्र बताता है कि कृष्ण ने पकड़ी है बात। अहंकार का स्वर बज रहा है उसमें। वह कह रहा है-मुझे दया आती है। ऐसा कृत्य मैं कैसे कर सकता हूँ! कृत्य बुरा है-ऐसा नहीं, ऐसा कृत्य मैं कैसे कर सकता हूँ! इतना बुरा मैं कहाँ हूँ! इससे तो उचित होगा–कृष्ण से वह कहता कि वे सब धृतराष्ट्र के पुत्र मुझे मार डालें वह ठीक होगा– बजाय इसके कि इतने कुकृत्य को करने को मैं तत्पर होऊँ। अहंकार अपने स्वयं की बलि भी दे सकता है। अहंकार जो आखिरी कृत्य कर सकता है वह शहीदी है। वह martyr भी हो सकता है और अक्सर अहंकार शहीद होता है। लेकिन शहीद होनेसे और मजबूत होता है। अर्जुन कह रहा है इससे तो बेहतर है कि मैं मर जाऊँ! मैं अर्जुन ऐसी स्थितिमें कुकृत्य नहीं कर सकूँगा। दया आती है मुझे। ये सब क्या करने को लोग इकठ्ठे हुए हैं? आश्चर्य होता है मुझे! उसकी बातसे ऐसा लगता है कि इस युद्ध के बननेमें वह बिल्कुल साथी–सहयोगी नहीं हैं। उसने 'को-ऑप्ट' नहीं किया है। यह युद्ध जैसे आकस्मिक उसके सामने खड़ा हो गया है। उसे, जैसे इसका कुछ पता नहीं है। यह जो परिस्थिति बनी है इसमें वह जैसे participant भागीदार नहीं हैं। इस तरह दूर खड़े होके बात कर रहा है कि दया आती है मुझे! आँख में आँसू भर गये हैं उसके। "नहीं, ऐसा मैं न कर सकूँगा। इससे तो बेहतर है कि मैं ही मर जाऊं! वही श्रेयस्कर है।" इस स्वर को कृष्णने पकड़ा है। इसलिए मैंने कहा है कि कृष्ण इस पृथ्वी-पर पहले मनोवैज्ञानिक हैं। क्योंकि दूसरा सूत्र कृष्ण का सिर्फ अर्जुन के अहं-

कारको और बढ़ावा देनेवाला सूत्र है । दूसरे सूत्रमें कहते हैं "कैसे अनार्यों जैसी तू बात करता है ।" आर्य का अर्थ है-श्रेष्ठ जन । अनार्य का अर्थ है निकृष्ट जन । आर्य का अर्थ है-अहंकारी जन । अनार्य का अर्थ है दीन हीन। तू कैसी अनार्यों जैसी बात करता है । अब सोचने जैसा है कि दया की बात अनार्यों जैसी बात है ? आँख में दया से भरे हुए आँसू अनार्यों जैसी बात है" ? और कृष्ण कहते हैं—"इस पृथ्वीपर अपयश का कारण बनेगा । और परलोक में भी अकल्याणकारी है ।" दया ? शायद ही कभी आपको ख्याल आया हो-कि संजय कहता है—दया से भरा अर्जुन आँखों में आँसू लिए और कृष्ण जो कहते है उसमें ताल-मेल नहीं पड़ता । क्योंकि दया को हमने कभी ठीक से नहीं समझा कि दया भी अहंकार का भूषण है। दया भी अहंकार का कृत्य है । वह भी ego-act है । अच्छे आदमी का। क्रूरता बुरे आदमी का ego-act है। ध्यान रहे-अहंकार अच्छाइयों से भी अपने को भरता है । बुराइयों से भी अपने को भरता है । और अक्सर तो ऐसा होता है कि जब अच्छाइयोंसे अहंकार को भरने की सुविधा नहीं मिलती तभी वह बुराइयों से अपने को भरता है । इसलिए जिन्हें हम सज्जन कहते हैं और जिन्हें हम दुर्जन कहते हैं-उनमें बहुत मौलिक भेद नहीं होता। original भेद नहीं होता। सज्जन और दुर्जन एक ही अहंकार की दूरी पर खड़े होते हैं । फर्क इतना ही है कि दुर्जन अपने अहंकार को भरने के लिए दूसरों को चोट पहुँचा सकता है । सज्जन अपने अहंकार को भरने के लिए स्वयं को चोट पहुँचा सकता है । चोट पहुँचाने में फर्क नहीं होता । अर्जुन कह रहा है-इनको मैं मारूं—इससे तो बेहतर है—मैं मर जाऊं । दुर्जन—अगर हम मनोविज्ञान की भाषामें बोले तो परपीडक—sadist होता है । और सज्जन जब अहंकार को भरता है तो आत्मपीडक—masochist होता है ।

मेसोच एक आदमी हुआ-जो अपने को मारता था । सभी स्वयं को पीड़ा देनेवाले लोग जल्दी सज्जन हो सकते हैं । अगर मैं आपको भूखा मारुं तो दुर्जन हो जाऊंगा-कानून अदालत में मुझे पकड़ेंगे, लेकिन मैं खुद ही अनशन करूं तो कोई कानून अदालत में मुझे पकड़ेगा नहीं । आप ही मेरा जुलुस निकालेंगे । लेकिन भूखा मारना आपको अगर बुरा है तो मुझ को भूखा मारना कैसे ठीक हो जायगा ? सिर्फ इसलिए कि यह शरीर मेरे जिम्मे पड़ गया है ? और वह शरीर आपके जिम्मे पड़ गया है ? तो आप के शरीर को अगर कोड़े मारुं-और आप को अगर नंगा खड़ा करूं और काँटों पर लिटा दूं तो

अपराध हो जायेगा । और खुद नंगा हो जाऊं और काँटों पे लेट जाऊं तो तपश्चर्या हो जायेगी । सिर्फ रुख बदलने से, सिर्फ तीर उस तरफ से हट के इस तरफ आ जाये-तो धर्म हो जाये ? अर्जुन कह रहा है कि इन्हें मारने के बजाय तो मैं मर जाऊँ । वह बात वही कह रहा है-मरने मारने की ही कह रहा है । उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है । हां, तीर का रुख बदल रहा है । और ध्यान रहे-दूसरे को मारने में कभी इतने अहंकार की तृप्ति नहीं होती जितना स्वयं को मारने में होती है । क्योंकि दूसरा मरते वक्त भी मुँह पे थूक के मर सकता है लेकिन खुद आदमी जब अपने को मारता है तो बिल्कुल निहत्था विना उत्तर के मरता है । दूसरे को मारना कभी पूरा नहीं होता । दूसरा मर के भी बच जाता है । उसकी आंखे कहती हैं कि मार डाला भला ? लेकिन हार नहीं गया हूँ । लेकिन खुद को मारते वक्त तो कोई उपाय ही नहीं है । हार हराने का मजा पूरा आ जाता है । अर्जुन दया की बात करता हो-और कृष्ण उससे कहते हैं कि, अर्जुन, तेरे योग्य नहीं है, ऐसी बातें । अपयश फैलेगा । वह तो सिर्फ उसके अहंकार को फुसला रहे हैं-persuade कर रहे हैं । यह दूसरा सूत्र कृष्ण का बताता है कि पकड़ी है उन्होंने नस । वह ठीक जगह छू रहे हैं उसे । क्योंकि उसे यह समझाना कि दया ठीक नहीं है, व्यर्थ है । उसे यह भी समझाना कि दया और करुणा का फासला है, अभी व्यर्थ है । अभी तो उसकी रग अहंकार है। अभी तो अहंकार sadism से masochismकी तरफ जा रहा है । अभी वह दूसरे को दुःख देने की जगह अपने को दुःख देने के लिए तत्पर हो रहा है । इस स्थितिमें वे दूसरे सूत्र में उससे कहते हैं कि तू क्या कह रहा है ? आर्य होकर, सभ्य सुसंस्कृत होकर, कुलीन होकर, कैसी अकुलीन जैसी बात कर रहा ! भागने की वात कर रहा है युद्ध से ! कायरता तेरे मन को पकड़ती है ! वे चोट कर रहे हैं उसके अहंकार को ।

बहुत बार गीता को पढ़ने वाले लोग ऐसे बारीक और नाजुक जगह पर बुनियादी भूल कर जाते हैं । क्या कृष्ण यह कह रहे हैं कि अहंकारी हो ? नहीं कृष्ण सिर्फ यह देख रहे हैं कि जो दया उठ रही है वह अगर अहंकार से उठ रही है तो अहंकार को फुलाने से तत्काल विदा हो जायेगी। इसलिए कहते हैं कातरपन की बातें कर रहा है । कायरता की बातें कर रहा है । सख्त से सख्त शब्दों का वे उपयोग करेंगे । यहां अर्जुन से वे जो कह रहे हैं-पूरे वक्त. उसमें क्या प्रतिक्रिया पैदा होती है-उसके लिए कह

रहे हैं। मनोविश्लेषण शुरू होता है। कृष्ण अर्जुनको psycho-analysis में ले जाते हैं। लेट गया अर्जुन कोच पर अब कृष्णकी। अब वह जो भी पूछ रहे हैं उसको जगाके पूरा देखना चाहेंगे कि वह है कहां? कितने गहरे पानी में? अब आगे से कृष्ण यहां psycho-analyst हैं-मनोविश्लेषक हैं। और अर्जुन सिर्फ patient है-सिर्फ बीमार है। और उसे सब तरफसे उकसाके देखना और जगाना जरूरी है। पहली चोट वे उसके अहंकार पर करते हैं। और स्वभावतः, मनुष्यकी गहरीसे गहरी और पहली बीमारी अहंकार है। वहां अहिंसा झूठी है और जहां अहंकार है-वहां शान्ति झूठी है। और जहां अहंकार है-वहां कल्याण और मंगल और लोकहित की बातें झूठी हैं। क्योंकि जहां अहंकार है-वहां ये सारीकी सारी चीजें सिर्फ अहंकारके आभूषणके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह कहता है-मैं द्रोण और भीष्मसे कैसे युद्ध करूँगा? वे मेरे पूज्य हैं। बात फिर भी वह विनम्रताकी बोलता है। लेकिन अहंकार अक्सर विनम्रताकी भाषा बोलता है और अक्सर विनम्र लोगोंमें, सबसे गहन अहंकारी पाये जाते हैं। असलमें विनम्रता defensive egoism है। वह सुरक्षा करता हुआ अहंकार है। आक्रमक अहंकार मुश्किल में पड़ सकता है। विनम्र अहंकार पहले से ही सुरक्षित है। वह insured है। इसलिए जब कोई कहता है "मैं तो कुछ भी नहीं -आपके चरणोंकी धूल हूं।" तब जरा उसकी आंखोंमें देखना। तब उसकी आंखें कुछ और ही कहती हुई मालूम पडेंगी। उसके शब्द कुछ और कहते मालूम पड़ेंगे।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

अर्थ : तब अर्जुन बोला कि हे मधुसूदन! मैं रणभूमिमें भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके प्रति किस प्रकार बाणोंसे युद्ध करूँगा, क्योंकि हे अरिसूदन! दोनों ही पूजनीय हैं।

आचार्यश्री :

तो-लेकिन अर्जुन नहीं पकड़ पाता। वो फिर वही दोहराता है-कृष्णने अर्जुनकी रग पर हाथ रखा है। लेकिन अर्जुन नहीं समझ पा रहा है। वह दूसरे कोनेसे फिर बात शुरू करता है। वह कहता है-द्रोणको,

जो मेरे गुरू हैं; भीष्मको-जो मेरे परम आदरणीय है, पूज्य हैं;- उनपर मैं कैसे...मैं कैसे आक्रमण करूंगा-यहा ध्यानमें रखने जैसी बात है-यहां भीष्म और द्रोण गौण हैं। अर्जुन कह रहा है-मैं कैसे आक्रमण करूंगा? इतना बुरा मैं नहीं कर सकता-कि द्रोण कि और बाण खींचूं कि भीष्मकी और छाती छेदूं। नहीं-यह मुझसे न हो सकेगा। यहां वह कह तो यही रहा है कि वे पूज्य हैं-ये मै कैसे करूंगा लेकिन गहरे में खोजें और देखें तो पता चलेगा-वह यह कह रहा है कि यह मेरी जो Image है-मेरी जो प्रतिमा है मेरी ही आंखों में जो मैं हूं? उसके लिए यह असम्भव है। इससे तो बेहतर है मधुसूदन! कि मै ही मर जाऊं। इससे तो अच्छा है प्रतिमा बचे, शरीर खो जाये। अहंकार बचे-मै खो जाऊं। वह जो image हैं, मेरा जो self-image है उसका। हर आदमीकी अपनी-अपनी एक प्रतिमा है। जब आप किसी पर क्रोध कर लेते हैं-और बादमें पछताते हैं और क्षमा मांगते हैं तो इस भ्रांतिमें मत पडना कि आप क्षमा मांग रहे हैं और पछता रहे हैं। असलमें आप अपने Self-image को वापस निर्मित कर रहे है। आप जब किसी पे क्रोध करते हैं तो आपने निरंतर अपनेको अच्छा आदमी समझा है। वही प्रतिमा आप अपने ही हाथसे खण्डित कर लें? क्रोध के बाद पता चलता है कि वह अच्छा आदमी जो मैं अपने को अब तक समझा था क्या मैं नहीं हूं? तो अहंकार कहता है-नहीं, आदमी तो मैं अच्छा ही हूँ। यह क्रोध जो हो गया यह बीच में आ गया। भूलचूक है-in spite of me मेरे बावजूद हो गया है। यह कोई मैंने नहीं किया है। हो गया-परिस्थितिजन्य है। पछताते हैं-क्षमा मांग लेते हैं। अगर सच में हो क्रोध के लिए पछताये हैं तो दुबारा क्रोध फिर जीवनमें नहीं आना चाहिए। नहीं, लेकिन कल फिर क्रोध आता है, नहीं, क्रोधसे कोई अड़चन न थी। अड़चन हुई थी कोई और बातसे। कभी सोचा ही नहीं था कि मैं और क्रोध कर सकता हूं। तो जब पछता लेते हैं तब आपकी अच्छी प्रतिमा-आपका अहंकार फिर सिंहासन पर विराजमान हो जाता है। वह कहता है देखो, माफी मांग ली। क्षमा मांग ली। विनम्र आदमी हूं। समयने, परिस्थितिने अवसरने, mood नहीं था, भूखा था, दफ्तरसे नाराज लौटा था, असफल था, कुछ काममें गड़बड़ हो गई थी-परिस्थितिजन्य था, मेरे भीतरसे नहीं आया था क्रोध, मैंने तो क्षमा मांग ली। जैसे ही होश आया, जैसे ही मैं लौटा-मैंने क्षमा मांग ली। आप अपनी प्रतिमाको फिर सजा संवारके, फिर

गहने आभूषण पहनाके, सिंहासन पर विराजमान कर लिये। क्रोधके पहले भी यह प्रतिमा सिंहासन पर बैठी थी, क्रोध में नीचे लुढक गई थी-फिर बिठा दिया । अब आप फ़िर पूर्ववत् पुरानी जगह आ गये। कल फिर क्रोध करेंगे । पूर्ववत् अपनी जगह आ गये । क्रोधके पहले भी यहीं थे । क्रोधके बाद भी यहीं आ गये । जो पश्चात्ताप है वह इस प्रतिमा की पुनर्स्थापना है। लेकिन ऐसा लगता है-क्षमा मांगता आदमी बड़ा विनम्र है। सब दिखावें सच नहीं हैं । सच बहुत गहरे हैं और अक्सर उठते हैं । वह आदमी आपसे क्षमा नहीं मांग रहा है । वह आदमी अपने ही सामने निंदित हो गया है। उस निन्दा को झाड़ रहा है। पोछ रहा है । वह फ़िर साफ़ सुथरा-स्नान करके फ़िर खड़ा हो रहा है। यह जो अर्जुन कह रहा है—पूज्य है उस तरफ़ उन्हें मै कैसे मारुं ? emphasis यहां उनके पूज्य होने पर नहीं हैं । एम्फेसिस (भार) यहां अर्जुनके "मैं" पर है । कि कैसे मारूं ? नहीं-नहीं ये अपने मैं की प्रतिमा खंडित करने से-कि लोकान्तर में लोग कहें कि अपने ही गुरू पर आक्रमण किया कि अपने ही पूज्यों को मारा इससे तो बेहतर है मधुसूदन कि मैं ही मर जाऊं । लेकिन लोग कहें-कि मर गया अर्जुन, लेकिन पूज्यों पर हाथ न उठाया । मर गया, मिट गया लेकिन गुरु पर हाथ नहीं उठाया । उसके "मैं" को पकड़ लेनेकी जरूरत है। अभी उसको पकड़ में नहीं है। किसीकी पकड़में नहीं होता । जिसका "मैं" अपनी ही पकड़ में आ जाये वह "मैं" के बाहर हो जाता है । हम अपने "मैं" को बचाबचाके जीते हैं । वह दूसरी दूसरी बातें करता जायेगा । वह substitute खोजता चला जायेगा। कभी कहेग यह, कभी कहेगा वह सिर्फ उस बिन्दु को छोड़ता जायेगा जो है । कृष्ण ने छूना चाहा था । वह इस बात को छोड़ गया । वह अनार्य-आर्य की बात नहीं उठाता । कातरता की बात वह नहीं उठाता । लोकमें यश, परलोक में भटकाव, उसकी बात वह नहीं उठाता । वह दूसरी बात उठाता है । जैसे उसने कृष्ण को सुना ही नहीं। उसके वचन कह रहे हैं कि बीच में जो कृष्ण ने कहा है अर्जुन ने नहीं सुना ।

सभी बातें जो बोली जाती हैं हम सुनते नहीं हैं। हम वही सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं। सभी जो दिखाई पड़ता है वह हम देखते नही हैं, हम वही देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं । सभी जो हम पढ़ते हैं वह पढ़ा नहीं जाता, हम वही पढ़ लेते हैं जो हम पढ़ना चाहते

हैं । हमारा देखना, सुनना, पढ़ना सब selective है। उसमे चुनाव है। हम पूरे वक्त वह छाँट रहे हैं जो हम नहीं देखना चाहते हैं ।

एक नया मनोविज्ञान है-गेस्टाल्ट—gestalt. यह जो अर्जुन ने उत्तर दिया वापस, यह गेस्टाल्ट का अद्भुत प्रमाण है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक कहते हैं-आकाश में बादल घिरे हों, तो हर आदमी उनमें अलग-अलग चीजें देखता है। डरा हुआ आदमी भूत-प्रेत देख लेता है। धार्मिक आदमी भगवान की प्रतिमा देख लेता है। फ़िल्मी दिमाग का आदमी अभिनेता-अभिनेत्रियाँ देख लेता है। वह एक ही बादल-आकाशमें है । अपना-अपना देखना हो जाता है। प्रत्येक आदमी अपनी ही निर्मित दुनिया में जीता है। और हम अपनी दुनियामें । इसलिए इस पृथ्वी पर एक दुनिया की भ्रान्तिमें मत रहना आप। इस दुनियामें जितने आदमी हैं—कमसे कम उतनी दुनियाँ हैं । अगर साढ़े तीन अरब आदमी हैं आज पृथ्वी पर-तो पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब दुनियायें हैं। और एक आदमी भी पूरी जिन्दगी एक दुनियामें रहता हो ऐसा मत सोच लेना। उसकी दुनिया भी रोज बदलती चली जाती है। पर्ल बकने में एक किताब अपनी आत्मकथा की लिखी है तो नाम दिया है-my Several worlds. मेरे अनेक संसार। एक आदमी के अनेक संसार कैसे होंगे ? रोज बदल रहा है। और प्रत्येक व्यक्ति अपनी दुनिया के आस-पास बाड़े, दरवाजे, संतरी, पहरेदार खड़े रखता है। वह कहता है कि इन को भीतर आने देना इन को बाहरसे कह देना कि घर पर नहीं है। यह हम लोंगो के साथ ही नहीं करते-सूचनाओं के साथ भी करते हैं।

अब अर्जुन ने बिल्कुल नहीं सुना है । कृष्णने जो कहा वह बिल्कुल नहीं सुना है । वह जो उत्तर दे रहा है वो बताते हैं कि वह Irrelevant है। उसकी कोई संगति नहीं है । हम भी नहीं सुनते हैं । दो आदमी बात करते हैं, अगर आप चुपचाप साक्षी बनके खड़े हो जायें तो बड़े हैरान होंगे। लेकिन साक्षी बनके खड़ा होना मुश्किल है । क्योंकि पता नहीं चलेगा और आप भी तीसरे आदमी भागीदार हो जायेंगे बात-चीतमें। अगर आप दो आदमियों का साक्षी बनके बात सुनें तो बहुत हैरान होंगे कि ये एक दूसरे से बात कर रहे हैं या अपने अपने से बात कर रहे हैं । एक आदमी जो कह रहा है दूसरा जो कहता है उससे उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं हैं । जुंगने एक संस्मरण लिखा है कि दो पागल प्रोफेसर उसके पागलखाने में भर्ती हुए इलाज के लिए। ऐसे भी प्रोफेसरोंके पागल होने की सम्भावना ज्यादा

है ! या ये भी हो सकता है कि पागल आदमी प्रोफेसर होने को उत्सुक रहते हैं । वे दोनों पागल हो गये हैं । साधारण पागल नहीं है । साधारण पागल डर जाता है, भयभीत हो जाता है । प्रोफेसर पागल हैं । पागल होके वे और भी बुद्धिमान हो गये हैं । जबतक जागे रहते हैं-घनघोर चर्चा चलती रहती हैं । जुंग खिड़की से छुपके सुनता है कि उनमें क्या बात होती है । बातें बड़ी अद्भुत होती है । बड़ी गहराई की होती हैं । दोनों informed हैं । दोनों ने बहुत पढ़ा-लिखा-सुना समझा है । कम उनकी जानकारी नहीं है शायद वही उनके पागलपन का कारण है ! जानकारी ज्यादा हो और ज्ञान कम हो तो भी आदमी पागल हो सकता है । और ज्ञान तो होता नहीं, जानकारी ही ज्यादा हो जाती है फिर वह बोझ हो जाती है । चकित है जुंग उनकी जानकारी देखकर । वे जिन विषयों पर चर्चा करते है, बड़े गहरे और नाजुक हैं । लेकिन इससे भी चकित ज्यादा दूसरी बात पर है और वह यह कि एक बोलता है उसको दूसरे से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता । लेकिन यह तो पागल के लिए बिल्कुल स्वाभाविक है । इससे भी ज्यादा चकित इस बात पर है कि जब एक बोलता है तो दूसरा चूप रहता है । और ऐसा लगता है कि सुन रहा है । और जैसे ही वह बन्द करता है कि दूसरा जो बोलता है तो लगता है कि उसने उसे बिल्कुल नहीं सुना । क्योंकि अगर वह आकाश की बात कर रहा था तो वह पाताल की शुरू करता है । उसमें कोई सम्बन्ध ही नहीं होता । तब वह अन्दर गया और उसने जाके पूछा कि और सब तो मेरी समझमें आ गया । आप गहरी बातें कर रहें हैं वह समझ में आ गया । समझ में यह नहीं आ रहा है कि जब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है ? तो वे दोनों हंसने लगे । उन्होंने कहा कि क्या तुम हमें पागल समझते हो ? इस दुनिया में पागल भर अपनेको कभी पागल नहीं समझते और जो आदमी अपनेको पागल समझता है समझना चाहिए वह आदमी पागल होने के ऊपर उठने लगा । क्या तुम मुझे पागल समझते हो ? क्या तुम हमें पागल समझते हो ? उन दोनोंने कहा । लेकिन जुंगने कहा, ऐसी भूल मैं कैसे कर सकता हूँ ? पागल, बिल्कुल आपको नहीं समझता हूँ । पर यह मैं पूछ रहा हूँ कि जब एक बोलता है तो दूसरा चूप क्यों रह जाता है ? तब उन्होंने कहा कि क्या तुम समझते हो कि हमें conversation का नियम भी मालूम नहीं है ? बातचीत करने की व्यवस्था भी मालूम नहीं ? हमें मालूम है कि जब एक बोले तो दूसरे को चूप रहना चाहिए । तब जुंगने

कहा कि जब तुम्हें इतना मालूम है तो मैं यह और पूछना चाहता हूँ कि जो एक बोलता है उससे, दूसरे को बोलनेका कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं होता । दोनों फिर हँसने लगे । उन्होंने कहा, खैर ! हम तो पागल समझे जाते हैं । लेकिन इस जमीन पर जहां भी लोग बोलते हैं दो, उनकी बातों में कोई सम्बन्ध होता है ? जुंग घबड़ाके वापिस लौट आया । उसने अपने संस्मरणमें लिखा है कि उस दिन से मैं भी सोचता हूँ--जब किसीसे बात करता हूँ सम्बन्ध है ? थोड़ा सम्बन्ध हम बना लेते हैं । जब आप से मैं बात कर रहा हूँ । -अगर हम पागल नहीं है जिसकी कि सम्भावना बहुत कम है तो जब आप बोल रहे हैं-तब वह मैं अपने भीतर बोले चला जाता हूँ । जैसे आप चूप होते हैं मैं बोलना शुरू करता हूँ । मेरा बोलना मैं शुरू करता हूँ उसका सम्बन्ध मेरे भीतर जो मैं बोल रहा था उससे होता है-आपसे नहीं होता । हां, इतना सम्बन्ध हो सकता है जैसे खूंटी और कोट का होता है । आपकी बातमेंसे कोई एक बात पकड़ लूँ, खूंटी बना लूँ और मेरे भीतर जो चल रहा है उसको उसपे टांग दूँ । बस, इतना सम्बन्ध होता है । अर्जुन और कृष्ण की चर्चा में यह मौका बार-बार आयेगा । इसलिए मैंने इसे ठीकसे आपसे कह देना चाहा । अर्जुनने बिल्कुल नहीं सुना कि कृष्ण ने क्या कहा ? 'नहीं ही कहा होता' ऐसी ही स्थिति है । वह अपने भीतर ही सुने चला जा रहा है । वह कह रहा है । ये पूज्य, ये द्रोण, ये भीष्म, वह यह सोच रहा होगा भीतर । इधर कृष्ण क्या बोल रहे हैं--वे बोल रहे हैं । वह परिधि के बाहर हो रहा है । उसके भीतर जो चल रहा है वह यह चल रहा है । वह कृष्ण से कहता है कि मधुसूदन ! ये पूज्य, ये प्रिय ! इन्हें मैं मार सकता हूँ ! मैं अर्जुन ? इसे ध्यान रखना-उसने कृष्ण की बात नहीं सुनी ।

प्रश्न : आचार्यश्री, आपने बताया कि प्रोफेसर पागल होते हैं तो आप पहले दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे ! अब आप आचार्य बन गये हैं । तो हमको आप उपलब्ध हुए यह हमारा सौभाग्य है । आपने अभी एक बात बतायी ego के बारेमें, तो प्रश्न यह होता है कि ego के बिना तो projection होता ही नहीं । psychologists तो यह कहते हैं कि ego-fulfilment के बिना

व्यक्तित्व पूर्णतया विकसित नहीं होता। आप अहंशून्यता की बातें कहते हैं। तो क्या ego को annihilate करने का आप सूचन दे रहे हैं ?

उत्तर : एक तो मैंने कहा कि प्रोफेसर के पागल होने की सम्भावना ज्यादा होती है। पागल हो ही जाता है ऐसा नहीं कहा है और दूसरा यह भी नहीं कहा है कि सभी पागल प्रोफेसर होते हैं। सम्भावना ज़्यादा होती है। असल में जहां भी तथाकथित ज्ञान का भार ज्यादा हो, 'बर्डन' हो, वहीं चित्त विक्षिप्त हो सकता है। ज्ञान तो चित्त को मुक्त करता है। ज्ञान का भार विक्षिप्त करता है। और ज्ञान जो मुक्त करता है वह स्वयं से आता है। और ज्ञान जो विक्षिप्त कर देता है वह स्वयं से कभी नहीं आता है। वह सदा पर से आता है। दूसरी बात पूछी है कि मनोवैज्ञानिक तो अहंकार को विकसित करने की बात करते हैं। मनोवैज्ञानिक निश्चित ही अहंकार को विकसित करने की बात करेंगे-सभी मनोवैज्ञानिक नहीं। बुद्ध नहीं करेंगे, कृष्ण नहीं करेंगे, महावीर नहीं करेंगे। फ्रायड करेगा, एरिक्सन करेगा। उसका कारण है। क्योंकि फ्रायड या एरिक्सन के लिए अहंकारसे ऊपर कोई और सत्य नहीं है तो जो आखिर सत्य है उसको विकसित किया जाना चाहिए।

महावीर, बुद्ध या कृष्ण के लिए अहंकार आखिरी सत्य नहीं हैं-केवल बीच की सीढी है। निर-अहंकार आखिरी सत्य हैं। अहंकार नहीं है। ब्रह्म आखिरी सत्य है। अहंकार सिर्फ सीढ़ी है। इसलिए बुद्ध या महावीर या कृष्ण कहेंगे-अहंकारको विकसित भी करो और विसर्जित भी करो। सीढ़ी पर चढ़ो भी और सीढ़ी को छोड़ो भी। आओ भी उस पर, जाओ भी उस पर से। उठो भी उस तक, पार भी हो जाओ। क्योंकि मन के पार भी सत्ता है। इसलिए मनका जो आखिरी सत्य है-अहंकार, वह पार की सत्ता के लिए छोड़ने का पहला कदम होगा। अगर मैं अपने घरसे आपके घर में आना चाहूं तो मेरे घर की आखिरी दीवाल छोड़ना ही आपके घरमें प्रवेश का पहला कदम होगा। मन की आखिरी सीमा अहंकार है। अहंकार से ऊपर मन नहीं जा सकता। क्योंकि पश्चिमका मनोविज्ञान मन को आखिरी सत्य समझ रहा है। इसलिए अहंकार के विकासकी बात उचित है। उचित कह रहा हूं, सत्य नहीं। सीमाके भीतर बिल्कुल ठीक है बात।

लेकिन जिस दिन पश्चिमके मनस्-शास्त्र को एहसास होगा, और एहसास होना शुरु हो गया है। जुंगके साथ दीवाल टूटनी शुरू हो गयी है। और अनुभव होने लगा है कि अहंकार के पार भी कुछ है। लेकिन अभी भी अहंकार के पार का जो अनुभव हो रहा है-पश्चिम के मनोविज्ञान को वो अहंकार के नीचे हो रहा है-below ego; beyond ego नहीं हो रहा है। अहंकार के पार भी कुछ है, मतलब अचेतन; चेतन से भी नीचे; अतिचेतन नहीं,-सुपरकॉन्शस नहीं; चेतनके भी आगे नहीं। लेकिन यह बड़ी शुभ घड़ी है। अहंकार के पार तो कम से कम कुछ है। नीचे ही सही और अगर नीचे है तो ऊपर होने की बाधा कम हो जाती है। और अगर हम अहंकार के पार नीचे भी कुछ स्वीकार करते हैं, तो आज नहीं कल-ऊपर भी स्वीकार करने की सुविधा बनती है। मनोविज्ञान तो कहेगा, अहंकार को ठीकसे integrated, crystallised-अहंकारको ठीक, शुद्ध, साफ,संश्लिष्ट हो जाना चाहिए-यही individuation—व्यक्तित्व यह है। कृष्ण नहीं कहेंगे। कृष्ण कहेंगे उसके आगे एक कदम और है। संश्लिष्ट एकाग्र हुए अहंकार को-किसी दिन समर्पित हो जाना चाहिए-surrendered हो जाना चाहिये। वह आखिरी कदम है अहंकार की तरफ। लेकिन ब्रह्म की तरफ वह पहला कदम है। निश्चित ही बूंद अपने को खो दे सागर में, तो सागर हो सकती है। और अहंकार अपने को खो दे सागर में, तो ब्रह्म हो सकता है। लेकिन खोने के पहले होना तो चाहिये। बूंद भी होनी तो चाहिए। अगर बूंद भी न हो, भाप हों तो सागरमें खोना मुश्किल है। अगर कोई भापकी बूंद ही नहीं हैं--तो हम उससे पहले कहेंगे-कि आओ सागर में कूद जाओ क्योंकि भाप सीधी सागरमें नहीं कूद सकती। कितने उपाय करें-आकाश की तरफ उड़ेगी। सागरमें कूद नहीं सकती। बूंद कूद सकती है। तो पश्चिमका मनोविज्ञान बूंद बनाने तक है। कृष्ण का मनोविज्ञान सागर बनाने तक है। लेकिन पश्चिम के मनोविज्ञानसे गुजरना पड़ेगा। जो अभी भाप है-उनको फ्रायड और जुंग के पाससे गुजरना पड़ेगा। तभी वे कृष्णके पास पहुंच सकते हैं। लेकिन बहुतसे भाप के कण सीधा ही कृष्ण के पास पहुंचना चाहते हैं। वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। बीचमें फ्रायड है ही। उससे बचा नहीं जा सकता। अन्त वह नहीं है, लेकिन प्रारम्भ वह जरूर है। कृष्ण का मनोविज्ञान चरम मनोविज्ञान है। the supreme जहाँ से मन समाप्त होता है वहाँ है वो।

वह last बेरियर पर है। और फ्रायड और एडलर मन की पहली सीमा की चर्चा कर रहे हैं। ये अगर ख्याल में रहे तो कठिनाई नहीं होगी। मैं भी कहूंगा-अहंकार को संश्लिष्ट करें-ताकि एक दिन समर्पित कर सकें। क्योंकि समर्पित वही कर सकेगा जो संश्लिष्ट है। जिसके अपने ही अहंकारके पच्चीस खंड हैं, schizophrenic जो है, जिसके भीतर एक मैं भी नहीं है कई मैं हैं-वह समर्पण करने कैसे जायेगा? एक मैं को समर्पण करेगा-दूसरा कहेगा, 'रहने दो-वापस आ जाओ'। हम अभी ऐसे ही हैं! मनोविज्ञान की समस्त खोजें कहती हैं-हम poly-psychic हैं। अनेक मैं हैं। रात एक मैं कहता है कि सुबह पांच बजे उठेंगे-कसम खा लेता है। सुबह पांच बजे दूसरा मैं कहता है-सर्दी बहुत है, छोड़ो। कहाँ की बातों में पड़े, फिर कल देखेंगे। करवट ले के सो जाता है। सुबह सात बजे तीसरा मैं कहता है कि बड़ी भूल की। शामको तय किया था, पांच बजे संकल्प बदलें क्यों? बड़ा पश्चात्ताप करता है। आप एक ही आदमी, पांच बजे तय किये थे तो सुबह किस आदमी ने आपसे कहा कि सो जाओ? आप के भीतर ही कोई बोल रहा है। बाहर कोई नहीं बोल रहा है और जब सो ही गये थे पांच बजे-तो सुबह सात बजे पश्चात्ताप क्यों कर रहे हैं? आप ही सोये थे। किसीने कहा नहीं था। अब यह पश्चात्ताप कौन कर रहा है? सामान्यतः हमें ख्याल आता है कि मैं एक मैं हूं-इसलिए बड़ा confusion पैदा होता है। हमारे भीतर बहुत 'मैं' हैं। एक मैं कह देता हैं-उठेंगे। दूसरा मैं कह देगा-नहीं उठेंगे। तीसरा मैं कहता है-पश्चाताप करेंगे। चौथा मैं सब भूल जाता है। कोई याद ही नहीं रखता इन सब बातों की। और ऐसे ही जिन्दगी चलती चली जाती है। मनोविज्ञान कहता है-पहले मैं को एक करो। एक मैं हो तो समर्पण हो सकता है। पच्चीस स्वर हो तो समर्पण कैसे होगा? इसलिए भगवानके सामने एक मैं तो झुक जाता है चरणोंमें, दूसरा मैं अकड़ के खड़ा रहता है-उसी मन्दिर में। एक मैं तो चरणों में सिर रख के पड़ा रहता है-दूसरा देखता रहता है कि मन्दिर में कोई देखने आया कि नहीं आया।

एक ही आदमी खड़ा है। पर दो 'मैं' हैं। एक वहां चरणों में झांक के देख रहा है कि लोग देख रहे हैं कि नहीं देख रहे हैं। अब समर्पण कर रहे हो-तो लोगों के देखनेवालोंसे क्या लेना देना है? एक मैं नीचे

चरणोंमें पड़ा है। दूसरा मैं कहता है-कहां के खेल में पड़े हो-सब बेकार है। कहीं कोई भगवान नहीं है। एक मैं अगर भगवान के चरण पकड़े हुअे हैं-दूसरा मैं दुकान पर बैठा हुआ काम में लगा है। मैं संश्लिष्ट होना चाहिये। तभी समर्पण हो सकता है। इसलिए मैं इनमें विरोध नही देखता, मैं इनमें विकास देखता हूं। फ्रायड अन्त नहीं हैं, लेकिन महत्त्वपूर्ण है, और 'मैं' संश्लिष्ट करने में उपयोगी कृष्ण अन्त हैं। वहां एक सीमा पर जाकर मैं को समर्पण भी कर देना है।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

अर्थ : इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी भोगना कल्याणकारक समझता हूँ, क्योंकि गुरूजनों को मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

अर्थ : और हमलोग यह भी नहीं जानते कि हमारे लिए क्या करना श्रेष्ठ है अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे। और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे सामने खड़े हैं।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

अर्थ : इसलिये कायरतारूप दोष करके उपहत हुए स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहितचित हुआ मैं, आपको पूछता हूँ। जो कुछ निश्चय किया हुआ श्रेयकारक साधन हो, वह मेरे लिए कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपके शरण हुए मुझे शिक्षा दीजिये।

आचार्यश्री :

अर्जुन अपनी ही बात कहे चला जाता है। पूछता मालूम पड़ता है कृष्णसे। लेकिन वस्तुतः कृष्णको ही धर्म क्या है-बताये चला जाता है। पूछ रहा है कि अविद्यासे मेरा मन भर गया है। क्या उचित है क्या

अनुचित है-उसका मेरा बोध खो गया है। लेकिन साथ ही कहे चला जाता है-कि अपनोंको मार कर तो जो अन्न भी खाऊँगा वो रक्तसे भरा हुआ होगा। अपनोंको मार कर सम्राट बन जानेसे तो बेहतर है कि मैं सड़कका भिखारी हो जाऊँ। निर्णय दिये चला जा रहा है। और कहता है अविद्यासे मेरा मन भर गया है। दोनों बातोंमें कोई संगति नहीं है। अविद्यासे मन भर गया है-तो अर्जुनके पास कहनेको कुछ भी नहीं होना चाहिए। इतना ही काफी है कि अविद्यासे मेरा मन भर गया है। मुझे मार्ग बतायें। मैं नहीं जानता क्या ठीक है? क्या गलत है? नहीं, लेकिन साथ ही वह कहता है कि यह ठीक है और यह गलत है। चित्त हमारा कितना भी कहे कि अविद्यासे भर गया। अहंकार माननेको राजी नहीं होता। अहंकार कहता है-मैं? और अविद्यासे भर गया? मुझे पता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है। दूसरी बात यह भी देख लेने जैसी है कि अहंकार जहां भी होता है-वहां सदा अतियोंका चुनाव करता है। Extreme is the choice. एक अतिसे ठीक दूसरी अतिको चुनता है। अहंकार कभी मध्यमें खड़ा नहीं होता। खड़ा नहीं हो सकता है। क्यों कि ठीक मध्यमें अहंकारकी मृत्यु है। तो वह कहता है कि सम्राट होनेसे तो भिखारी होना बेहतर है। दो आखिरी polarity चुनता है। और कहता है सम्राट होनेसे तो भिखारी होना बेहतर है। अर्जुन या तो सम्राट हो सकता है या भिखारी हो सकता है। बीचमें कहीं नहीं हो सकता है। या तो उस छोर पर-नम्बर एक पर। या इस छोर पर नम्बर एक, लेकिन नम्बर एक ही सकता है। यह थोड़ा ध्यान रखने जैसा है।

बर्नार्ड शॉने कभी कहा कि अगर मुझे स्वर्ग भी मिले और नम्बर दो होना पड़े तो मैं इन्कार करता हूँ। मै नर्क में ही रहना पसन्द करूँगा-लेकिन नम्बर एक होना चाहिए। नम्बर एक होना चाहिए नर्क भी पसन्द कर लूँगा। नम्बर दो भी अगर हो जाता हूँ तो स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए। क्या मजा होगा उस स्वर्गमें जिसमें नम्बर दो हो गये? नर्कमें भी मजा हो सकता है-अगर नम्बर एक है। और इसलिये नम्बर एक होने वाले लोग अगर सब नर्कमें इकट्ठे हो जाते हों तो बहुत हैरानी नहीं है। दिल्लीसे नर्क का रास्ता एकदम करीब है। दिल्ली गये कि नरकमें गये। वहां बीचमें 'गेप' भी नहीं है। वह जो नम्बर एक होनेके लिए पीड़ित है-अगर उससे सम्राट होना छूटता हो-तो वह तत्काल जो दूसरा विकल्प है-वह भिखारी

होनेका है। ये विकल्प देखना जरूरी है क्यों कि यह विकल्प सिर्फ अहंकार ही चुनता है। यह विकल्प-extreme-अतिका विकल्प सदा अहंकार ही चुनता है। क्यों कि अहंकारको इससे मतलब नहीं है कि सम्राट बनो कि भिखारी बनो। मतलब इससे है कि नम्बर एक! अर्जुन कह रहा है कि इससे तो बेहतर है कि मैं भिखारी सही, सड़क पर भीख मांगू। ऊपरसे दिखाई पड़ता है कि बड़ी विनम्रताकी बात कह रहा है। सम्राट होना छोड़ कर भीख मांगनेकी बात कह रहा है। लेकिन भीतरसे बहुत फर्क नहीं है। भीतर बात वही है। भीतर बात वही है-अतिपर होनेकी बात अहंकार की इच्छा है। आखिरी पोल (pole) पर, ध्रुव पर खड़े होनेकी इच्छा अहंकारकी इच्छा है। या तो इस कोने या उस कोने। मध्य उसके लिए नहीं है।

बुद्धके मनोविज्ञानका नाम मध्य-मार्ग है-the middle way। और जब बुद्धसे किसीने पूछा कि आप अपने मार्गको मज्झमनिकाय, बीचका मार्ग क्यों कहते हैं? तो बुद्धने कहा-जो दो अतियोंके बिलकुल बीचमें खड़ा हो जाय वही केवल अंहकारसे मुक्त हो सकता है। अन्यथा मुक्त नहीं हो सकता है। एक छोटी सी घटना बुद्ध के जीवनके साथ जुड़ी है। एक गाँवमें बुद्ध आये हुए हैं। सम्राट दीक्षित होने आ गया। और सम्राटने कहा कि मुझे भी दीक्षा दे दें। बुद्धके भिक्षुओंने बुद्धके कानमें कहा-सावधानीसे देना इसे आप! क्योंकि हमने जो इसके सम्बन्धमें सुना है वह बिल्कुल विपरीत है। यह आदमी कभी रथसे नीचे नंगे पैरों भी नहीं चला है। यह आदमी अपने महलमें जो भी सम्भव है-सारे भोगके साधनोंमें डूबा पड़ा है। ये अपनी सीढ़ियां भी चढ़ता है तो सीढ़ियोंके किनारे रेलिंगकी जगह नंगी स्त्रियोंको खड़ा रखता है। उनके कन्धों पर हाथ रखके चलता है। जरा इससे सावधान रहना। शराब और स्त्रीके अतिरिक्त इसकी जिन्दगीमें कभी कुछ नहीं आया है। और यह आज अचानक भिक्षु होने और त्यागी बनने, तपश्चर्याका व्रत लेने आया है। यह आदमी बीचमें धोखा न दे जाये। बुद्धने कहा-जहां तक मैं आदमियोंको जानता हूँ-यह आदमी धोखा न देगा। यह एक अतिसे ऊब गया अब दूसरी अति पर जा रहा है। एक अंतिम (extreme) से ऊब गया है-अब दूसरी एक्स्ट्रीम पर जा रहा है। पर उन्होंने कहा हमें सन्देह होता है-क्यों कि कलतक यह बिल्कुल और था। बुद्धने कहा-मुझे

सन्देह नहीं होता है । इस तरहसे लोग अक्सर ही अतियोंमें चुनाव करते हैं । भय मत करो । उन्होंने कहा कि हमें नहीं लगता है यह भीख मांग सकेगा । सड़क पर नंगे पैर चल सकेगा-धूप-छांव सह सकेगा । हमें नहीं दिखाई पड़ता । बुद्धने कहा-यह तुमसे ज्यादा सह सकेगा । हँसे वे सब । उन्होंने कहा-कि इस मामलेमें कम से कम बुद्ध निश्चित ही गलत हो जाने वाले हैं । लेकिन नहीं, बुद्ध गलत नहीं हुए । दूसरे ही दिन से देखा गया कि भिक्षु अगर रास्ते पे चलते, तो रास्तेके नीचे चलता वह सम्राट, जहां कांटे होते । और भिक्षु अगर वृक्षकी छायामें बैठते तो वह सम्राट धूपमें खड़ा रहता और भिक्षु अगर एक बार भोजन करते तो सम्राट दो दिनमें एक बार भोजन करता । छः महीनोंमें वह सूखके काला पड़ गया । अति सुन्दर उसकी काया थी । भूखसे हड्डियां उसकी बाहर निकल आयीं । पैरोंमें घाव बन गये । बुद्धने अपने भिक्षुओंसे पूछा कि कहो तुम कहते थे कि यह आदमी भरोसे का नहीं । और मैंने तुमसे कहा था कि यह आदमी बहुत भरोसेका है । यह आदमी तुमसे आगे है । तपश्चर्या कर लेगा । फिर वे भिक्षु कहने लगे । हम हैरान हैं कि आप कैसे पहचानें ? बुद्धने कहा-अंहकार सदा एक अति से दूसरी अति चुन लेता है । बीचमें नहीं रुक सकता । ये सम्राटोंमें सम्राट था । ये भिक्षुओंमें भिक्षु । ये सम्राटोंमें नंबर एक सम्राट था । इसने सारी सुन्दर स्त्रियां राज्यकी इकट्ठी कर रखी थीं । इसने सारे हीरे जवाहरात अपने महलके रास्तों पर जड़ रखे थे । अभी वह भिक्षुओंमें साधारण भिक्षु नहीं है । वह भिक्षुओंमें असाधारण भिक्षु है । तुम चलते हो सीधे रास्ते पर-यह चलता है तिरछे रास्ते पर । तुम कांटे बचाके चलते हो, यह कांटे देख के चलता है कि कहां-कहां हैं । तुम छायामें बैठते हो यह धूपमें खड़ा होता है । यह नम्बर एक रहेगा-कहीं भी रहेगा । यह नम्बर एक होना नहीं छोड़ सकता । यह तुम्हें मात करके रहेगा । इसने सम्राटोंको मात किया-तुम भिखारियों को कैसे मात नहीं करेगा ? अंहकार अति चुनता है । अर्जुन कह रहा है कि छोड़ दें सब साम्राज्य । कुछ अर्थ नहीं है । भिक्षा मांग लेंगे । मांग सकता है । बिल्कुल मांग सकता है-अंहकार की वहाँ भी तृप्ति हो सकती है । मध्यमें नहीं रुक सकता । अति से अति पर जा सकता है-अति से अति पर जाने में कोई रूपान्तरण, कोई transformotion नहीं हैं । फिर बुद्ध एक दिन उस सम्राटके पास गये । सांझको, रुग्ण बीमार वह राहके किनारे पड़ा था । बुद्धने उससे कहा-मैं एक बात पूछने आया हूं । मैंने सुना है कि तुम जब सम्राट थे तो वीणा बजानेमें बहुत कुशल थे न ?

तुमसे पूछने आया हूं-कि वीणाके तार अगर बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होगा ? उसने कहा, कैसे पैदा होगा ? तार टूट जाते । तो बुद्धने कहा, बहुत ढीले हों तार तब संगीत पैदा होता है ? उस सम्राटने कहा कि नहीं-बहुत ढीले हो तो टंकार ही पैदा नहीं होती है । संगीत कैसे पैदा होगा ? तो बुद्धने कहा-मैं जाऊं । एक बात और तुमसे कह जाऊं कि जो वीणाके तारोंका नियम है-न बहुत ढीले, न कसे; अर्थात् न कसे-न ढीले । बीचमें कहीं, जहाँ न तो कहा जा सके कि तार कसे हैं-न कहा जा सके कि तार ढीलें हैं । ठीक मध्यमें जब तार होते हैं तभी संगीत पैदा होता है । जीवन की वीणाका भी नियम यही है । काश ! अर्जुन बीचकी बात करता तो कृष्ण कहते-जाओ ! बात समाप्त हो गयी । कोई अर्थ न रहा । लेकिन वह बीचकी बात नहीं करता है । वह एक अति से दूसरी अति की बात कर रहा है । दूसरी अति पर अंहकार फिर अपनेको भर लेता है ।

प्रश्न : आचार्यश्री, यहाँ भी एक 'मध्य'का प्रश्न आगया है । श्रोतागणमें से पूछते हैं कि कोर्ट में सबसे पहले गीता पर क्यों हाथ रखवाते हैं ? कोर्टमें क्या रामायण, उपनिषद् रखते नहीं ? क्या गीता पर एक श्रद्धा है या फिर अन्धी श्रद्धा ?

उत्तर : पूछा है कि अदालतमें शपथ लेते वक्त गीता पर हाथ क्यों रखवाते हैं ? रामायण पर क्यों नहीं रखवाते ? उपनिषद् पर क्यों नहीं ?-बड़ा कारण है । पता नहीं, अदालतको पता है या नहीं । लेकिन कारण है । कारण बड़ा है । राम कितने ही बड़े हों, लेकिन इस मुल्कके चित्तमें वे पूर्ण अवतार की तरह नहीं है । अंश है उनका अवतार । उपनिषद्के ऋषि कितने ही बड़े ज्ञानी हों, लेकिन अवतार नहीं हैं । कृष्ण पूर्ण अवतार हैं । परमात्मा अगर पूरी पृथ्वी पर उतरे, तो करीब करीब कृष्ण जैसा होगा । इसलिए कृष्ण इस मुल्कके अधिकतम मनको छू पाये । बहुत कारण हैं । एक तो पूर्ण अवतारका अर्थ होता है—multidi-mensional बहुआयामी । जो मनुष्यके समस्त व्यक्तिको स्पर्श करता हो । राम one-dimensional है । हर्बट मार्कुसने एक किताब लिखी है-one-dimensional man । एक आयामी मनुष्य । राम one-dimensional हैं । एक आयामी । एक सूरे हैं- एक ही स्वर है उनमें । स्वभावतः एक ही स्वरका आदमी

सिर्फ़ उस एक सूरे आदमियोंके लिये प्रीतिकर हो सकता है । सबके लिए प्रीतिकर नहीं हो सकता ।

महावीर और बुद्ध सभी एक सुरे हैं। एक ही स्वर है उनका । इसलिये समस्त मनुष्यों के लिये महावीर बुद्ध प्रीतिकर नहीं हो सकते । हाँ, मनुष्यों का एक वर्ग होगा-जो बुद्ध के लिए दीवाना हो जाये । जो महावीर के लिए पागल हो जाये । लेकिन एक वर्ग ही होगा। सभी मनुष्य नहीं हो सकता। लेकिन कृष्ण multi-dimensional हैं। ऐसा आदमी जमीन पर खोजना कठिन है जो कृष्णमें प्रेम करने योग्य तत्त्व न पा लें । चोर भी कृष्ण को प्रेम कर सकता है । नाचनेवाला भी प्रेम कर सकता है । साधु भी प्रेम कर सकता है । असाधु भी प्रेम कर सकता है । युद्ध के क्षेत्रमें लड़नेवाला भी प्रेम कर सकता है । गोपियों के साथमें नृत्य करनेवाला भी प्रेम कर सकता है। कृष्ण एक ओर्केस्ट्रा-orchestra है । बहुत वाद्य हैं । सब बज रहे हैं । जिसे जो वाद्य पसन्द हो-वह अपने वाद्य को प्रेम कर ही सकता है और इसलिये पूरे कृष्ण को प्रेम करनेवाले आदमी पैदा नहीं हो सके । जिन्होंने प्रेम किया उन्होंने कृष्णमें चुनाव किया है । सूरदास तो बालकृष्ण को प्रेम करतेहैं । गोपियों से वे बहुत डरते हैं । इसलिए बालकृष्ण को प्रेम करते हैं । क्योंकि बालकृष्ण उन्हें जमते हैं कि बिलकुल ठीक है कि बालक है तो चलेगा । जवान कृष्ण से सूरदास को डर लगता है । क्यों कि जवान सुरदाससे सुरदासको डर लगता है । तो अपना चुनाव है उनका । वे अपना चुनाव कर लेंगे । अब अगर केशवदास को कृष्णको प्रेम करना है तो बालकृष्ण की वो फिक्र ही छोड़ देंगे । वो तो जवान कृष्ण जो चाँद की छाया में नाचता है-जिसकी कोई नीति-नियम नहीं हैं, जिसकी कोई मर्यादा नहीं-जो असर्याद है, जिसको कोई बन्धनमें नहीं पकड़ते-जो एकदम अराजक है । तो केशवदास तो उस युवा कृष्णको चुन लेंगे-बालकृष्ण की फिक्र छोड़ देंगे । अबतक कृष्ण को पूरा प्रेम करनेवाला आदमी नहीं हुआ । क्योंकि पूरे कृष्ण को प्रेम करना तभी संभव है-जब वह आदमी भी multi-dimensional हो । हम आमतौर से एक-आयामी होते हैं । एक हमारा track होता है व्यक्तित्व का । एक रेल की पटरी होती है । उस पटरी पर हम चलते हैं । मगर कृष्णमें हमें अपनी पटरी के योग्य मिल जायेगा । इसलिये कृष्ण इस मुल्क के हर तरह के आदमी के लिए प्रीतिकर हैं । बुरे से बुरे आदमी के लिए प्रीतिकर हो सकते हैं । ध्यान रहें, अदालतमें अच्छे आदमी को तो कभी-कभी जाना पड़ता है । इन्हें जब बुरे आदमी ले जाते हैं तब जाना पड़ता

है । अदालत आमतौर से बुरे आदमियों की जगह है । बुरा आदमी अगर रामको प्रेम करता होता तो अदालत में आता ही नहीं ! जो अदालत में आ गया है, राम की कसम खिलाना नासमझी है उसको । कृष्ण की कसम खिलाई जा सकती है । अदालत में आके भी आदमी कृष्ण को प्रेम करता हुआ हो सकता है । बुरे आदमी को भी कृष्ण खुले हैं । बुरे आदमी के लिए भी उनके मकान का एक दरवाजा है-जो खुला है । राम वगैरह के मन्दिर में इकहेरे (एक ही) दरवाजा है । कृष्ण के मन्दिर में बहुत दरवाजे हैं। वहाँ शराबी भी जाये तो उसके लिए भी एक दरवाजा है । असलमें कृष्ण से बड़ी छाती का आदमी खोजना बहुत मुश्किल है । इसलिए मैं नहीं कहता कि अदालत को पता होगा । नहीं, मुझे पता नहीं है । लेकिन जाने अनजाने, कृष्णका रेंज-range व्यक्तियों को छूने का सर्वाधिक है ! अधिकतम व्यक्ति उनसे स्पर्शित हो सकते हैं । ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिससे कृष्ण आलिंगन करने से इन्कार करें । कहें-कि तू हमारे लिए नहीं, हट ! सबके लिए हैं । इसलिए सर्वाधिक के लिए होने की सम्भावना है । और पूछा है कि क्या सिर्फ अन्धविश्वास है ? नहीं, सिर्फ अन्धविश्वास नहीं है । इस जगतमें सत्यसे भी बड़ा सत्य प्रेम है और जिसके प्रति प्रेम है उसके प्रति असत्य होना मुश्किल है । असलमें जिसके प्रति प्रेम है उसी के प्रति सत्य हो पाते हैं । जिन्दगी में हम सत्य वहीं हो पाते हैं जहाँ हमारा प्रेम है । और अगर प्रेमी के पास भी आप सत्य न हो पाते हों-तो समझना कि प्रेम का धोखा है । अगर एक पति अपनी पत्नी से भी कुछ छिपाता हो, और सत्य न हो पाता हो; एक पत्नी अपने पति से भी कुछ छिपाती हो और सत्य न हो पाती हो-कोई बड़ी बात नहीं, छोटी-मोटी बात भी छिपाती हो,-अगर उसे क्रोध आ रहा हो, क्रोध को भी छिपाती हो, तो भी प्रेम की कमी है । तो भी प्रेम नहीं है । प्रेम अपने को पूरा नग्न उघाड़ देता है । सब तरहसे, सब पर्तों पर। अन्धविश्वास कारण नहीं है ।

प्रेम की रग को पकड़ना जरूरी है-तो ही सत्य बुलवाया जा सकता है । यह मैं नहीं जानता-कि अदालत को पता है-या नहीं । क्योंकि अदालत को प्रेम का कुछ पता होगा, इसमें जरा संदेह है । लेकिन इतना तो मनस्शास्त्र कहता है कि अगर हम प्रेम की रग को पकड़ लें, तो आदमी को सत्य तरह से बोलने की सर्वाधिक संभावना है । बोलेगा कि नहीं यह दूसरी बात है।

लेकिन अधिकतम सम्भावना वहीं है जहां प्रेम की रग को हम पकड़ लेंगे। और जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ अधिकतम असत्य की सम्भावना है। क्योंकि सत्य का कोई कारण नहीं रह जाता है।

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

अर्थ : क्योंकि भूमि में निष्कण्टक धनधान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओं के स्वामीपनेको प्राप्त होकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ जो कि मेरी इन्द्रियों के सुखानेवाले शोक को दूर कर सके।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वातूष्णीं बभूव ह ॥९॥

अर्थ : संजय बोला, हे राजन्! निद्राको जीतनेवाला अर्जुन अर्न्तयामी श्रीकृष्णके प्रति इस प्रकार कह कर फिर श्रीगोविन्द भगवान् को युद्ध नहीं करूँगा ऐसे स्पष्ट कह कर चूप हो गया

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

अर्थ : उसके उपरांत हे भरतवंशी धृतराष्ट्र। अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकयुक्त अर्जुन को हँसते हुए से यह वचन कहा।

आचार्यश्री :

अर्जुन अभी अनिश्चय को स्थिति में है। संजय कहता है-फिर भी, ऐसा कहके कि मैं युद्ध नहीं करूँगा अर्जुन रथ में बैठ गया है। अति अनिश्चय स्थितिमें, ऐसा निश्चयात्मक भाव कि मैं युद्ध नहीं करूँगा-वह सोचने जैसा है। इतना 'डिसीसिव' वक्तव्य, इतना निर्णयात्मक वक्तव्य कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। और इतनी अनिश्चय की स्थिति में क्या ठीक है—क्या गलत है ? इतनी अनिश्चय की स्थिति-कि मन अविद्या से भरा है मेरा। मुझे प्रकाशित करो। लेकिन मुझे प्रकाशित करो-यह कहता हुआ भी वह निर्णय तो अपना ही ले लेता है। वह कहता है-मैं युद्ध नहीं करूँगा। इसके जरा भीतर प्रवेश करना जरूरी होगा। अक्सर, जब आप बहुत निश्चय की बात बोलते हैं तब आपके

भीतर अनिश्चय गहरा होता है। एक आदमी कहता है कि मैं दृढ़ निश्चय करता हूँ। जब ऐसा कोई आदमी कहे तो समझना कि उसके भीतर अनिश्चय बहुत ज्यादा है। नहीं तो दृढ़ निश्चय की जरूरत नहीं पड़ेगी। और एक आदमी कहे-मेरा ईश्वर पर पक्का भरोसा है-तो समझना कि भरोसा भीतर बिल्कुल नहीं है। नहीं तो पक्के भरोसेका 'लेबल' लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। और एक आदमी बार बार कहे कि मैं सत्य बोलता हूँ तो समझना कि भीतर असत्य की बहुत सम्भावना है। अन्यथा ऐसे बोलने की जरूरत नहीं पड़ेगी। हम अपने भीतर जो डाँवाडोलपन है-उसे निश्चयात्मक वक्तव्यों को ऊपर से थोप कर मिटाने की कोशिश में रत होते हैं। हम सभी। हम सभी जो भीतर बिल्कुल निश्चित नहीं हैं-उसको भी बाहर चेहरे पर निश्चित करके देख लेना चाहते हैं।

अब ये अर्जुन बड़े मजे की बात कह रहा है। वह कह रहा है मैं युद्ध नहीं करूंगा। उसने तो आखिरी निर्णय ले लिया। उसने निष्पत्ति ले ली। उसने तो 'कनक्लुडिंग' concluding बात कह दी। अब कृष्ण पर छोड़ा क्या है ? अगर युद्ध नहीं करेगा, तो अब कृष्ण को पूछने को क्या बचा है ? सलाह क्या लेनी है ? इसलिये दूसरी बात जो संजय कह रहा है वह बड़ी मजेदार है। वह कह रहा है-''कृष्ण ने हँसते हुए''। वह हँसी किस बात पर है ? हँसने का क्या कारण है ? अर्जुन हँसी योग्य है ? इतने दुःख और पीड़ा में पड़ा हुआ। इतने संकटमें, इतनी क्राइसिस (crisis) में-और कृष्ण हँसते हैं। लेकिन अबतक नहीं हँसे थे। पहली दफे कृष्ण हँसते हैं उसके वक्तव्य को सुनकर। उस हँसी का कारण है कि वे देखते हैं इतना अनिश्चित आदमी इतना निश्चित वक्तव्य दे रहा है कि युद्ध नहीं करूँगा। धोखा किसको दे रहा है। उसके धोखे पर, उसके self-deception उसकी आत्मवंचना पर कृष्ण को हँसी आ जाती है। जो जानता है उसे आयेगी। देख रहे हैं कि नीचे तो दरारें ही दरारें है उसके मनमें। देख रहे हैं कि नीचे तो कटा-कटा मन है, उसका टूटा टूटा मन है। देख रहे हैं कि नीचे कुछ भी तय नहीं है और ऊपर से वह कहता है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा ! यह अपने को धोखा दे रहा है। हम सब देते हैं। और जब भी हम बहुत निश्चय की भाषा बोलते हैं, तब भीतर अनिश्चय को छिपाते हैं। जब हम बहुत प्रेम की भाषा बोलते हैं तो भीतर घृणा को छिपाते हैं। और हम बहुत आस्तिकता की भाषा बोलते हैं तो

भीतर नास्तिकता को छिपाते हैं। आदमी उलटा जोता है। ऊपर जो दिखाई पड़ता है ठीक उससे उल्टा भीतर होता है। इसलिये कृष्ण की हँसी बिल्कुल मौजूद, ठीक वक्त पर है। विरोध होता है-उनका विरोध बहुत साफ है। अर्जुन वैसा काम कर रहा है कि एक हाथसे ईंट रख रहा है मकान की, और दूसरे हाथ से खींच रहा है! एक हाथसे दीवार उठाता है, दूसरे हाथसे खींचता है। दिन भर मकान बनाता है, रात गिरा लेता है। यह जो दोहरा काम वह कर रहा है इसलिए कृष्ण हँस रहे हैं। यह हँसी उसके व्यक्तित्व के इस दोहरेपन पर, schizophrenic-विभक्तमनस्कता पर हँसी के सिवाय और क्या हो सकता है? मगर कृष्ण की हँसी में काफी इशारा है। लेकिन मैं नहीं समझता कि अर्जुन ने वह हँसी देखी होगी और मैं नहीं समझता कि अर्जुन ने वह हँसी सुनी होगी।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

अर्थ: हे अर्जुन! तू न शोक करने योग्यके लिए शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है, परन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी नहीं शोक करते हैं ॥ ११ ॥

आचार्यश्री:

हँस कर जो कृष्णने कहा है-वह और भी कठोर है। वे अर्जुनको कहते हैं कि तुम शास्त्रकी भाषा बोल रहे हो। लेकिन पण्डित नहीं हो। मूढ़ हो, मूर्ख हो। क्योंकि शास्त्रकी भाषा बोलते हुए भी तुम जोनिष्पत्ति यां निकाल रहे हो, वे तुम्हारी अपनी हैं। शास्त्रकी भाषा बोल रहे हो। क्या क्या अधर्म हो जायेगा? क्या क्या अशुभ हो जायेगा? क्या क्या बुरा हो जायेगा? पूरे शास्त्रकी भाषा अर्जुन बोल रहा है। लेकिन शास्त्र की भाषा पर अपनेको थोप रहा है। जो निष्कर्ष लेना चाहता है वह उसके भीतर लिया हुआ है। शास्त्रसे केवल गवाही और समर्थन खोज रहा है। मूर्ख और पण्डितमें एक ही फर्क है। मूर्ख भी शास्त्र की भाषा बोल सकता है। अक्सर बोलता है। अक्सर बोलता है। कुशलतासे बोल सकता है क्यों कि मूर्ख होने और शास्त्रकी भाषा बोलनेमें कोई विरोध नहीं है। लेकिन मूर्ख शास्त्रसे वही अर्थ निकाल लेता है जो निकालना चाहता

है। शास्त्रसे मूर्खको कोई प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन अपनेसे है। शास्त्रको भी वह अपने साथ खड़ा कर लेता है गवाही की तरह। सीमाँ वेलने कहीं एक वाक्य लिखा है लिखा है। कि कुछ लोग हैं जो सत्यको भी अपने पक्षमें खड़ा करना चाहते हैं और कुछ लोग हैं-जो सत्यके पक्षमें स्वयं खड़े होना चाहते हैं। बस, दो ही तरह के लोग हैं। कुछ लोग हैं जो धर्मको अपनी पीठके पीछे खड़ा करना चाहते हैं। शास्त्रको अपने पीछे खड़ा करना चाहते हैं। और कुछ लोग हैं जो धर्मके साथ खड़े होनेका साहस रखते हैं। लेकिन धर्मके साथ खड़ा होना बड़ा क्रान्तिकारी कदम है। क्योंकि धर्म मिटा डालेगा-आपको तो बचने नहीं देगा। लेकिन धर्मको अपने पक्षमें खड़ा कर लेना बहुत कनफर्मिस्ट, conformist, बहुत सरल, बड़ा रूढिग्रस्त कदम है। क्योंकि आप अपनेको बचानेके लिये सुविधा और सिक्योरिटी खोजता है। अर्जुन पण्डितकी भाषा बोल रहा है। पण्डित जैसी बातें बोल रहा है। लेकिन अर्जुनको ज्ञानसे-प्रज्ञासे, कुछ लेना देना नहीं है। अपने पक्षमें सारे शास्त्रोंको खड़ा करना चाहता है। और जो व्यक्ति शास्त्रको अपने पक्षमें खड़ा कर लेना चाहता है स्वभावतः अपनेको शास्त्रके उपर रख लेता है। और अपनेको शास्त्रके ऊपर रख लेनेसे ज़्यादा खतरनाक और कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि उसने यह तो मान ही लिया कि वह ठीक है। फिर तो गलती होनेकी भी उसे अब कोई सम्भावना नहीं रही। उसने अपने ठीक होनेका तो अन्तिम निर्णय ले लिया। अब वह शास्त्रोंमें भी अपनेको खोज लेता है।

ईसाई फकीर एक बात कहा करते हैं कि शैतान भी शास्त्र से हवाले दे देता है। अक्सर देता है। कोई कठिनाई नहीं है शास्त्र से हवाले देने में! आसान है बात। अर्जुन भी वैसे ही शास्त्र के हवाले दे रहा है। और बड़े मजे की बात यह है-किस आदमी के सामने शास्त्र के हवाले दे रहा है? जब शास्त्र मूर्तिमन्त सामने खड़ा हो तब शास्त्रके हवाले सिर्फ नासमझ दे सकता है। किस आदमी के सामने ज्ञानकी बातें बोल रहा है? जब ज्ञान सामने खड़ा हो तब ज्ञान की उधार बातें सिर्फ नासमझ बोल सकता है। कृष्ण का हँसना उचित है। और कृष्ण का यह कहना भी उचित है कि अर्जुन, तू पण्डित की भाषा बोलता है। लेकिन निपट गंवारी का काम कर रहा है। किसके सामने?

सुना है मैंने कि बोधिधर्म के पास एक आदमी गया बुद्ध की एक किताब ले कर और बोधिधर्म से बोला कि इस किताब के सम्बन्ध में मुझे

कुछ समझाओ । बोधिधर्मने कहा कि यदि तू समझता है कि बुद्ध की किताब में समझा सकूँगा, तो किताब को फेंक । मुझ से ही समझ ले और अगर तू समझता है कि बुद्ध की किताब, बोधिधर्म नहीं समझा सकेगा, तो मुझे फेंक । किताब को ही समझ ले । कृष्ण की हँसी बहुत उचित है । क्यों कि हवाले दे रहा है और बड़े मजे की बात है । पूरे समय कह रहा है भगवन्! हे भगवान्! हे मधुसूदन! और शास्त्र के हवाले दे रहा है! भगवान के सामने भी कुछ नासमझ शास्त्र लेके पहुँच जाते हैं । उनकी नासमझी का कोई अन्त नहीं है । हां, अगर कभी भगवान भी उन्हें मिल जाय, तो उसके सामने भी वह गीता के उद्धरण देंगे कि गीता में ऐसा लिखा है! तो भगवान को हँसना ही पड़ेगा–कि कमसे कम अब तो गीता छोड़ो! लेकिन वे नहीं छोड़ेंगे । वह अर्जुन, जो आम पण्डित की नासमझी है वही कर रहा है । तब कृष्ण सीधे और साफ कह रहे हैं । और इतनी सीधी और साफ बात, कम कही गयी है । बहुत कम कही गयी है । कृष्ण कह सकते हैं । कहने का कारण है । लेकिन अर्जुन इसे भी सुनेगा या नहीं, यह कहना मुश्किल है । अर्जुन करीब करीब पूरी गीता में बहुत समय तक अन्धे और बहरे का ही प्रदर्शन करता है । अन्यथा, शायद गीता की जरूरत हीं नहीं थी । अगर वह एक बार गौर से आँख खोल के कृष्ण को देख लेता तो ही बात समाप्त हो गयी थी । लेकिन वह भगवान भी कहे चला जाता है और उनकी तरफ ध्यान भी नहीं दे रहा है । अगर खुद भगवान ही सारथी है अगर सच में वह जानता है कि वह भगवान है तो जब वे सारथी बन कर हो रथपर बैठ गये हों और लगाम उनके ही हाथ में हो तब वह व्यर्थ अपने शिर पर वजन क्यों ले रहा है सोचनेका? अगर वे भगवान ही है, ऐसा वह जानता है तो और पूछने की क्या गुंजाइश है? हाथ में ही लगाम उनके हैं, छोड़ दें बात। लेकिन वह 'कहता' है भगवान–'जानता' अभी नहीं है । हम भी भगवान कहे चले जाते हैं, जानते नहीं हैं । मन्दिरमें एक आदमी भगवान के सामने खड़े होके कहता है कि नौकरी नहीं लग रही है । नौकरी लगवा दे भगवान! अगर भगवान को जानता ही है तो इतना तो जानना ही चाहिए कि नौकरी नहीं लग रही है-इसका उन्हें पता होगा तो कृपा करके 'इन्फर्मेशन' मत दें । और अगर इतना भी उनको पता नहीं है तो ऐसे भगवान के सामने हाथ जोड़के भी कुछ होनेवाला नहीं हैं । जो आम भक्त भगवान के

सामने कर रहा है वह कह रहा है भगवान और शक उसे इतना भी है कि अभी लड़के को नौकरी नहीं लग रही ।

जीसस-शूली पर आखिरी क्षण में-जब हाथ में उनके खीले ठोक दिये तो उनके मुँहसे एक आवाज निकल गयी जोर से, कि हे भगवान! यह क्या दिखला रहा है? यह क्या करवा रहा है! एक क्षण को-जीससके मुँह से निकल गया यह क्या करवा रहा है! मुझे क्या हुआ? शिकायत हो गयी! मतलब क्या हुआ? मतलब यह हुआ कि जीसस कुछ और देखना चाहते थे । कुछ और हो रहा है । मतलब यह हुआ कि समर्पण नहीं है? मत-लब यह हुआ कि भगवान के हाथों में लगाम नहीं है? मतलब यह हुआ कि इस क्षण में जीसस भगवान से ज्यादा बुद्धिमान अपने को समझ रहे हैं! तत्काल जीससे को ख्याल आ गया । अर्जुन को बहुत मुश्किल से ख़्याल आता है । जीसस को तत्काल ख्याल आ गया । जैसे ही उनके मुँह से यह आवाज निकली: हे भगवान! यह क्या दिखला रहा है? दूसरा वाक्य उन्होंने कहा–क्षमा कर, जो तेरी मरजी । Thy will be done. तेरी ही इच्छा पूरी हो । यह मैंने क़्या कह दिया? क्या दिखला रहा है? शक पैदा हो गया। मेरे हिसाब में तो, इस एक वचन को बोलते वक़्त जीसस, मरियम के बेटे जीसस थे । और दूसरे वचन को बोलते वक्त–वे क्राईस्ट हो गये । इस बीचमें क्रान्ति घटित हो गयी। एक क्षण पहले तक वे सिर्फ मरियम के बेटे जीसस थे जिसने कहा, यह क्या दिखला रहा है? शिकायत मौजूद थी। आस्तिक के मनमें शिकायत नहीं हो सकती । दूसरे क्षणमें ही तत्काल उनके मुँह से निकला कि क्षमा कर । तेरी इच्छा पूरी हो । जो तू कर रहा है वही ठीक है । उससे अन्यथा ठीक होनेका कोई सवाल ही नहीं है । बस वो क्राईस्ट हो गये । दूसरे ही क्षण वे मरियमके साधारण बेटे न रहें । वो परमात्मा के पुत्र हो गये हैं ।

अर्जुन कहे तो चला जा रहा है भगवान, भगवान, लेकिन वह सम्बोधन है । वैसे ही जैसे सभी सम्बोधन झूठे होते हैं! औपचारिक होते हैं । अभी भगवान उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है । दिखाई तो उसे यही पड़ रहा है कि अपने सखा है कृष्ण। आ गया है साथ। सारथीका काम कर रहा है । इसलिए पूछ लेते हैं । बाकी भगवान की जो अनुभूति है वह अगर उसे हो जाय तो पूछने को क़्या बचता है? उसे कहना चाहिये कि लगाम तुम्हारे हाथमें है। जो मर्जी । Thy will be done. अपनी इच्छा पूरी करो ।

इसलिए उसका भगवान का सम्बोधन अभी सार्थक नहीं है। क्योंकि वह सम्बोधनों के बाद भी निर्णय खुद ले रहा है। वह कह रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। कह रहा है भगवान! और मैं युद्ध नहि करूंगा। इस पर कृष्ण हँसे और कहे कि तू बड़ी विरोधी बातें बोल रहा है तो उचित ही है!

प्रश्न : निरहंकार हो जानेसे निष्क्रियता नहीं आयेगी?

उत्तरः—निरहंकार होनेसे कोई निष्क्रिय नहीं होता है—निर्विचार होनेसे कोई निष्क्रिय नहीं होता है। निरहंकार होनेसे सिर्फ कर्ताका भाव चला जाता है। लेकिन कर्म परमात्माको समर्पित होकर पूर्ण गतिसे प्रवाहित होते हैं। नदी बहती है, कोई अहंकार नहीं है। हवाएं चलती है, कोई अहंकार नहीं है। फूल खिलते हैं-कोई अहंकार नहीं। ठीक, ऐसे ही सहज निरहंकारी जीवनसे सब कुछ होता है। सिर्फ भीतर कर्ताका भाव संग्रहित नहीं हो रहा है। इसलिए जो मैंने कहा कि अर्जुनका अहंकार ही पूरे समय उसकी पीड़ा और उसका सन्ताप बना है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह अहंकार छोड़ दे तो कर्म छूट जायगा। और जैसे मैंने कहा कि विचार मनुष्यको चिंता में डालता है। निर्विचार हो जाये चित्त, तो चिंताके बाहर हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि निर्विचार चित्त फिर बोलेगा नहीं, करेगा नहीं, अभिव्यक्ति नहीं रहेगी। नहीं ऐसा नही। निर्विचार चित्त पोली बाँसकी तरह हो जाएगा। गीत उससे बहेंगे लेकिन, अपने नहीं, परमात्माके ही बहेंगे। विचार उससे निकलेंगे-लेकिन अपने नहीं, परमात्माके ही निकलेंगे। समस्तके प्रति समर्पित होगा वैसा चित्त। बोलेगा वही जो परमात्मा बुलाता है। करेगा वही जो परमात्मा कराता है। स्वयंके बीचका जो 'मैं' का आधार है वह बिखर जाएगा। इसके बिखरते ही चिन्ता नहीं है, इसके बिखरते ही कोई सन्ताप, कोई anxiety नहीं है।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

अर्थ : मैं कभी नहीं था और तू भी कहीं कभी न था एसा नहीं है। पूर्वकालमें ये राजायें नहीं थे ऐसा भी नहीं है। और इसी तरह हम सब कभी नहीं होंगे ऐसा भी नहीं है॥

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

अर्थ : देहधारी आत्माको जैसे कौमारावस्था, यौवन और वृद्धावस्था प्राप्त होती है और आत्मा अन्य देहको उपलब्ध होता है इसमें धीरपुरुष मोहित नहीं होता है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

अर्थ : हे कौन्तेय! शीतोष्णता और सुखदुःख सब इन्द्रियोंका स्पर्श कराने वाले है। आना और जाना उसका स्वभाव है। इसलिए हे भारत! तितिक्षा करना।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

अर्थ : क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! सुख—दुःखको समान समझने वाले जिस धीर पुरुषको यह इन्द्रियोंके विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्षके लिए योग्य होता है।

आचार्यश्री :

अर्जुन ऐसी चिंता दिखाता हुआ मालूम पड़ता है कि ये सब जो आज सामने खड़े दिखाई पड़ रहे हैं, युद्धमें मर जाऐंगे, नहीं हो जाऐंगे। कृष्ण उसे कहते हैं,-जो है वह सदासे था, जो नहीं है; वह सदा ही नहीं है। इस बातको थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। धर्म तो सदा ऐसी बात करता रहा है। लेकिन, विज्ञानने भी ऐसी बात कहनी शुरू की है। विज्ञानसे ही शुरू करना उचित होगा। क्योंकि धर्म शिखरकी बातें करता है जिन तक सबकी पहुँच नहीं। विज्ञान आधारकी बातें करता है जहां हम सब खड़े हैं। विज्ञान की गहरीसे गहरी खोजोंमें एक खोज यह है कि अस्तित्वको अन—अस्तित्वमें नहीं ले जाया जा सकता है। जो है उसे विनष्ट करनेका कोई उपाय नहीं है और जो नहीं है उसको सृजन करनेका भी कोई उपाय नहीं है। रेत के एक छोटेसे कणको भी हमारे विज्ञानकी सारी जानकारी, सारे जगतकी प्रयोगशालायें और सारे जगतके वैज्ञानिक मिल करके विनष्ट नहीं कर सकते। रूपान्तरित भर कर सकते हैं। नए रूप भर दे सकते हैं। जिसे हम सृजन

कहते है—क्रियेशन कहते हैं वह भी नए रूपका निर्माण है, नए अस्तित्त्वका नहीं। existence का नहीं form का। और जिसे हम विनाश कहते हैं वह भी अस्तित्त्वका विनाश नहीं है। सिर्फ रूपका आकृतिका है। आकृतियां बदली जा सकती हैं-लेकिन जो आकृतिमें छिपा है वह अपरिवर्तित है। करीब करीब ऐसा, जैसे कि गाड़ीका चाक चलता है, घूमता है, लेकिन एक कील है जो खड़ी है, जिसपर चाक घूमता रहता है। जो चाकको ही जानते हैं वे कहेंगे सब परिवर्तन है। जो कीलको भी जान लेंगे-वे कहेंगे-सब परिवर्तन के मूलमें, केन्द्र पर ठहरा हुआ भी कुछ है। और बड़े मजेकी बात यह है कि अगर चाकसे कील अलग कर लें तो चाक जरा भी घूम नहीं पाएगा। चाकका घूमना उसपर निर्भर है जो नहीं घूमता है। रूप बदलते हैं, रूपका बदलना उसपर निर्भर है-जो अरूप है। फार्मलेस है। अर्जुन जब कह रहा है कि ये सब मर जाएंगे तब वह फार्मकी, रूपकी, आकृतिकी बात कह रहा है। वह कह रहा है कि सब मिट जाएंगे। उसे आकृतिसे ज़्यादाका कोई भी पता नहीं और जब कृष्ण कहते हैं कि नहीं जिन्हें तू आज देख रहा है वे पहले नहीं थे ऐसा नहीं हैं-वे पहले भी थे। मैं भी पहले था। तू भी पहले था। और ऐसा भी नहीं है कि जो हम आज हैं वे कल नहीं होंगे। कल भी हम होंगे। सदा-सदा अनादिसे अनन्त तक हमारा होना है। यहां कृष्ण और अर्जुन दो अलग चीजों की बात कर रहे हैं यह समझ लेना जरूरी है। अर्जुन रूपकी बात कर रहा है-कृष्ण अरूपकी बात कर रहे हैं। अर्जुन उसकी बात कर रहा है जो दिखाई पड़ता है। कृष्ण उसकी बात करते हैं जो नहीं दिखाई पड़ रहा है। अर्जुन उसकी बात कर रहा है-जो आंखों और हाथोंकी पकड़में आता है। कृष्ण उसकी बात कर रहे हैं-जो हाथ, आंख, और कानकी पकड़के पीछे छूट जाता है। अर्जुन जैसा हम सब सोचते हैं, वैसा सोचता रहा है। कृष्ण वैसा कह रहे हैं जैसा हम सब जान सकें कभी, तो सौभाग्य है। जो दिखाई पड़ता है, वह सदा नहीं था। 'सदा' तो बहुत बड़ा शब्द है। जो दिखाई पड़ता है वह क्षण भर पहले भी नहीं था आप मेरे चेहरेको देख रहे हैं। क्षणभर पहले यह चेहरा यह नहीं था। क्षणभर बाद यही नहीं होगा। क्षणभरमें बहुत कुछ मेरे शरीरमें मर गया और बहुत कुछ नया आ गया।

बुद्ध कहा करते थे-कोई मुझसे मिलने आता है तो उससे कहा करते थे कि, तुम जो मिलने आए थे, जब तुम बिदा होंगे तो वही नहीं होंगे

मिलने आया था। घन्टे भरमें बहुत कुछ बदल जाता है। एक आदमी ७० सालमें कोई ९० बार पूराका पूरा बदल जाता है। हर सात (?) सालमें शरीरके सब अणु-परमाणु बदल जाते हैं। प्रति क्षण शरीरमें कुछ मर रहा है और बाहर फ़ेंका जा रहा है। प्रति क्षण शरीरमें नया जीवित हो रहा है, नया आ रहा है। भोजनसे आप नया डाल रहे हैं और प्रतिपल शरीरसे बहुत कुछ बाहर फेंका जा रहा है। सात सालमें पूरा शरीर बदल जाता है लेकिन हम कहे चले जाते हैं कि मैं वही हूं।

आकृतिकी समानता आकृतिकी एकता बन जाती है। फिल्म देखते हैं कभी आप। अगर पर्दे पर फिल्म को धीरे धीरे चलायें तो आप बहुत हैरान हो जायेंगे। इतना हाथ पैर से इतना ऊपर सिर तक उठे, इतने हाथ उठने के लिए हज़ारों चित्र लेने पड़ते हैं। फिर ये चित्र एकदम से, तेजी से, चलाये जाते हैं। एक चित्र इतने दूर, दूसरा ऊपर, तीसरा ऊपर, चौथा और ऊपर-इतनी तेजीसे घूमने से हाथ उठता हुआ मालूम पड़ता है। लेकिन, अगर उन्हें धीरे चलाया जाय तो आप पाएंगे कि हाथ के हज़ार चित्र लेने पड़े हैं। ठीक ऐसे ही जब हम एक व्यक्ति को देख रहे हैं-तो हम एक ही व्यक्ति को नहीं देख रहे हैं। जितनी देर हमने देखा उसके हज़ार चित्र हमारी आँखोंने ग्रहण किए। भीतर चित्र संश्लिष्ट हुए और एक आकृति हमारे मनमें बनी। जब तक बनी है तब तक बाहर सब बदल गया। जब रात को आकाशमें तारे दिखाई पड़ते हैं, जो तारे हमें दिखाई पड़ते है वे वहीं नहीं होते जहाँ दिखाई पड़ते है। वहां कभी थे। क्योंकि जो निकटतम तारा है उसे भी हम तक आनेमें कोई चार साल रोशनी को लग जाते हैं और रोशनी धीरे नहीं चलती है। रोशनी चलती है-एक सेकण्डमें एक लाख ८६ हज़ार मील। एक लाख ८६ हज़ार मील प्रति सेकण्ड से प्रकाश की किरण यात्रा करती है। हम तक, चार साल लगते हैं-निकटतम तारे से हम तक पहुँचने में। जब हमारे पास किरण पहुँचती है तो हमें तारा वहाँ दिखाई पड़ता है जहाँ चार साल पहले था। इस बीच हो सकता है-रहा ही न हो-बिखर गया हो। और इतना तो तय है कि इस जगह अब नहीं होगा-जहाँ चार साल पहले था। इस बीचमें करोड़ों, अरबों, खरबों मीलों की यात्रा कर गया। इसलिए रात को हमें जो तारे दिखाई पड़ते हैं वहाँ नहीं है-जहाँ दिखाई पड़ते हैं। रात बड़ी झूठी है। तारे बिलकुल झूठे हैं।

कोई तारा वहाँ नहीं है और दूरके तारे हैं-किसी तारे को सौ वर्ष लगते हैं, हज़ार वर्ष लगते हैं रोशनी पहुँचाने में, करोड़ वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे हैं, जब पृथ्वी बनी थी-कोई चार अरब बर्ष पहले-तबसे उनकी चली रोशनी अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुँची। इन चार अरब वर्षोंमें न जाने क्या-क्या हो गया हो। जो हमें दिखाई पड़ता है वह वही नहीं है जो है। उतनी देरमें भी बदल जाता है जब आपसे मैं देखता हूँ-आपके चेहरे को, आपसे किरण मुझ तक आती है, तब तक भी समय गुजरा। आप वहीं नहीं होते। इस बीच भीतर सब कुछ बदल गया है। आकृति तो, सदा की तो बात दूर, क्षण भर भी एक नहीं रहती। हेरा तुर्क(?)ने कहा है-एक ही नदीमें दुबारा नहीं उतर सकते हैं। You cannot step twice in the same river. यह भी जरा ठीक नहीं है, बिल्कुल ठीक नहीं है। एक ही नदी में एक बार भी उतरना बहुत मुश्किल है। दुबारा उतरना असंभव है। एक नदीमें एक बार भी उतरना मुश्किल है। क्योंकि जब पैर आपका नदी की सतह को छूता है तब नीचे नदी भागी चली जा रही है। जब पैर और थोड़ा नीचे जाता है तब ऊपर नदी भागी चली जा रही है। जब पैर और ऊपर जाता है तब नदी भागी जा रही है। आपका पैर नदीमें एक फीट उतरता है-उस बीच नदी का सारा पानी भागा जा रहा है। जब आप ऊपर छुए थे तब नीचे का पानी भाग गया है, जब आप नीचे पहुँचे तबतक उपर का पानी नहीं है। आकृति तो नदी की तरह भाग रही है। लेकिन आकृति हमें स्थिर दिखाई पड़ती है। समानता की वजह से तादात्म्य मालूम होता है। वही है जो कल देखा था। वही है जो सुबह देखा था। वही है। प्रति पल आकृति बदली जा रही है। यह आकृतियों का जो जगत, यह रूप का जो जगत है। अर्जुन इस रूपके जगतके प्रति चिंतित है बहुत। हम भी चिंतित हैं बहुत। जो मर ही रहा है प्रतिपल उसके लिए वह कह रहा है कि ये मर जाएंगे तो क्या होगा? जो मर ही रहा है, जिसे बचाने का कोई उपाय नहीं है उसके लिए वह चिंतित है और जो असंभव के लिए चिंतित है वह चिंता से कभी मुक्त नहीं हो सकता। असंभव की चिंता ही विक्षिप्तता बन जाती है। आकृति को, सदा बचाना तो दूर, क्षण भर भी बचाना मुश्किल है। एक आकृति का जगत है रूप का; ध्वनि का; किरण का, तरंगों का। वह कम्पित है पूरे समय। सब बदला जा रहा है। अभी हम यहाँ इतने लोग बैठे हैं, हम सब बदले जा रहे हैं, सब कम्पित हैं, सब तरंगायित है। सब wavering हैं।

सब बदल रहा है। इस बदलाहट की जगत को जो भी सोचता हो, बचाने की आकांक्षा कर रहा है-असंभव आकांक्षाओं के किनारे टकरा-कर ही मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है। कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू जो कह रहा है कि ये मर जायेंगे तो मैं तुझे कहता हूँ ये पहले भी थे ये बाद में भी होंगे। तू इनके मरने की चिंता छोड़ दे! क्यों? तो मुझे सुकरात की घटना याद आती है।

सुकरात जब मर रहा था तो उसके एक मित्र क्रेटो ने पूछा कि आप मर जाएंगे लेकिन आप चिंतित और परेशान नहीं दिखाई पड़ते तो सुकरात ने कहा-मैं इसलिए चिंतित और परेशान नहीं हूँ क्योंकि मैं सोचता हूं यदि मर के मर ही जाऊँगा तब तो चिंताका कोई कारण ही नहीं है, क्यों-कि जब बचूंगा ही नहीं तो चिंता कौन करेगा? दुःखी कौन होगा, पीड़ित कौन होगा? कौन जानेगा कि मैं मर गया? अगर मैं मर ही जाऊँगा तो जानने को भी कोई नहीं बचेगा कि मैं मर गया। जानने को भी कोई नहीं बचेगा कि मैं कभी था। जानने को कोई नहीं बचेगा कि सुकरात जैसा कुछ था। इसलिए चिंता का कोई कारण नहीं है। और अगर नहीं मरा; अगर नहीं मरा मर कर भी, तब तो चिंता का कोई कारण नहीं है। और दो ही संभावना हैं-सुकरात ने कहा। या तो मैं मर ही जाऊँगा और या फिर नहीं ही मरूँगा और तीसरी कोई भी संभावना नहीं है। इसलिए मैं निश्चिंत हूँ।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि जो मरने वाला है वह तेरे बचाने से नहीं बचेगा और जो नहीं मरनेवाला है वह तेरे मारने से नहीं मर सकता है। इसलिए तू व्यर्थ की चिंता में पड़ा है। इस व्यर्थ की चिंता को छोड। यह शायद, रूप और अरूप के बीच जो जगत का फैलाव है अगर हम रूप की तरफ से पकड़ें तब भी चिंता व्यर्थ है क्योंकि जो मिट ही रहा है, मिट ही रहा है। मिट ही रहा है, मिट ही जायगा। पानी पर खींची गई लकीर है। खींच भी नहीं पाती कि मिटनी शुरू हो जाती है! हाथ उठ भी नहीं पाता और मिट गयी होती है। अगर हम अरूप से सोचें तो जो नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा, वह कभी मिटा नहीं है। लेकिन अरूप से हमारा कोई परि-चय नहीं है, अर्जुन का भी कोई परिचय नही है। यह भी समझ लेना जरूरी है कि अर्जुन की चिंता एक और दूसरी सूचना भी देती है। अर्जुन कहता

है ये सब मर जाएँगे। इसका मतलब है अर्जुन अपने को भी रूप ही समझता है अन्यथा ऐसा नहीं कहेगा। हम दूसरों के संबंध में जो कहते हैं वह हमारे संबंध में ही कहा गया होता है। जब मैं किसी को मरते देखकर सोचता हूँ कि मर गया, खो गया, मिट गया, तब मुझे जानना चाहिए कि मुझे अपने भीतर भी उसका पता नहीं है जो नहीं मिटता है, नहीं मरता है, नहीं खोता है। अर्जुन जब जाहिर कर रहा है कि ये मर जाएंगे तो वह अपनी मृत्यु की ही चिंता जाहिर कर रहा है। वह यह जानता नहीं कि उसके भीतर भी कुछ है जो नहीं मरता है। और जब कृष्ण कह रहे हैं कि ये नहीं मरेंगे तब कृष्ण अपने संबंध में ही कह रहे हैं क्योंकि वे उसे जानते हैं जो नहीं मरता है। हमारा बाहर का ज्ञान हमारे भीतर के ज्ञान का ही विस्तार है। हमारे जगत का ज्ञान हमारे स्वयं के ज्ञान का ही विस्तार है। extension है। जो हम अपने संबंधमें जानते हैं उसे ही फ़ैलाके हम समस्त के सम्बन्ध में जान लेते हैं। और जो हम अपने संबंध में नहीं जानते उसे हम किसी और के संबंध में कभी नहीं जान सकते। आत्मज्ञान ही ज्ञान है। बाकी सब ज्ञान गहरे अज्ञान पे खड़ा होता है और अज्ञान पे खडे ज्ञानका कोई भी भरोसा नहीं है और यह अर्जुन बड़ी ज्ञान की बातें करता हुआ मालूम पड़ता है। वह बड़ी धर्म की बातें करता हुआ मालूम पड़ता है। लेकिन उसे इतना भी पता नहीं है कि अरूप भी है कोई। निराकार भी है कोई। अस्तित्व के आधारमें कुछ है जो अमर्त्य है। इसका उसे कुछ भी पता नहीं है। और जिसे अमर्त्यका पता नहीं है उसके भी जीवन में अभी ज्ञान की कोई भी किरण नहीं फूटी। जिसे मृत्यु का पता है वह घने अंधकार और अज्ञानमें खड़ा है। कसौटी है यह। अगर ज्ञात है आपको सिर्फ मृत्यु; तो अज्ञान आधार है। अगर ज्ञात है आपको अमर्त्य; नहीं जो मरता, तो ज्ञान आधार है। अगर मृत्यु का भय है मन में तो गवाही है वह भय इस बात की-कि आपको अमर्त्यका कुछ भी पता नहीं है। और अमृत ही है। और, मृत्यु केवल ऊपर बनी हुई लहरों का नाम है। सागर ही है। लेकिन सागर दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई लहरें पड़ती हैं। आप कभी सागर के किनारे गए हैं तो सागर देखा है? कहेंगे-जरूर देखा है। लेकिन सिर्फ लहरें ही देखी होंगी, सागर नहीं देखा होगा। लहरें सागर नहीं हैं। लहरें सागर में हैं जरूर, लेकिन सागर लहरें नहीं हैं। क्योंकि सागर बिना लहरों के भी हो सकता है। लेकिन लहरें बिना

सागर के नहीं हो सकती। पर दिखाई लहरें पड़ती हैं। उन्हीं का जाल फ़ैला है ऊपर। आंखें उन्हीं को पकड़ती हैं, कान उन्हीं को सुनते हैं। और मजा यह है कि जिस लहर को आप देख रहे हैं-लहर का मतलब ही यह है कि आप उसे कभी न देख पाएँगे। क्योंकि लहर देख रहे हैं तभी बदली जा रही है। देख भी नहीं पाए कि बदल गयी। लहर का मतलब ही है-जो हो रही है-नहीं हो रही है। जिसका होना और न होना एक साथ चल रहा है। जो उठ रही है और गिर रही है और जो है और नहीं है। जो एक साथ डोल रही है। इस लहर को ही देखते हैं। जिसने लहरोंको ही सागर समझा-वह चिंतित हो सकता है कि क्या होगा? लहरें मिट रही हैं-क्या होगा? लेकिन जो सागर को जानता है वह कहेगा-लहरों को बनने दो, मिटने दो। लहरों में जो पानी है-जो सागर है, वह पहले भी था जब लहर नहीं थी और बादमें भी होगा-जब लहर नहीं होगी।

जीसस से उनके एक मित्र ने पूछा है कि—अब्राहम एक बहुत पुराना प्रोफेट (prophet) हुआ जेरूसलेम में। तो अब्राहम बहुत पहले हुआ। "आप अब्राहम के संबंध में क्या जानते है?" तो जीससने कहा—जब अब्राहम हुआ उसके पहले भी मैं था। Before Abraham I was. मैं अब्राहमके पहले भी था। निश्चित ही उस आदमी को शक हुआ होगा। तीस साल से ज्यादा उमर नहीं थी जीसस की। अब्राहम को मरे हजारों साल हो गए थे और यह आदमी कहता है कि अब्राहम के पहले भी मैं था। जब अब्राहम नहीं हुआ-तब भी मैं था। असल में जीसस सागर की बात कर रहे हैं। उस लहर की बात नहीं कर रहा है-जो मरियम से उठी। वह जो जीसस नाम की लहर है उसकी बात नहीं कर रहे हैं। वह उस सागर की बात कर रहे हैं जो लहरों के पहले और लहरों के बाद है। और जब कृष्ण कहते हैं कि पहले भी हम थे-तू भी था, मैं भी था; ये जो लोग सामने युद्ध के स्थल पर आकर खड़े हैं ये भी थे-बाद में भी हम ही होंगे-तो वे सागर की बात कर रहे हैं और अर्जुन लहर की बात कर रहा है और अक्सर सागर और लहर की बात करने वाले लोगों में संवाद बड़ा मुश्किल है। communication बहुत मुश्किल है। क्योंकि कोई पूर्व की बात कर रहा है, कोई पश्चिम की बात कर रहा है। इसलिए गीता इतनी लम्बी चलेगी। क्योंकि अर्जुन बार बार लहरों की बातें उठाएगा और कृष्ण बारबार सागर की बात करेंगे। और उनके

बीच कहीं भी, कहीं भी, कटाव नहीं होता। कहीं वे एक दूसरे को काटते नहीं। काट दें तो बात हल हो जाय। इसलिए लम्बी चलेगी बात। वह फिर लौट के लहरों पर लौट आएगा। उसे लहरें ही दिखाई पड़ती हैं और जिसे लहरें दिखाई पड़ती हैं उसका भी कसूर क्या है ? लहरें ही ऊपर होती हैं। असल में जो देखने पर ही निर्भर है उसे लहरें ही दिखाई पड़ेगी। अगर सागर को देखना हो तो खुली आँख से देखना जरा मुश्किल है। आंख बंद करके देखना पड़ता है। अगर सागर को देखना हो तो, सच तो यह है कि आंख से देखना ही नहीं पड़ता। सागर में डुबकी लगाते वक्त आंख बन्द कर लेनी पड़ती है, लहरों से नीचे उतरना पड़ता है सागर में। लेकिन जो अभी अपने ही चित्त की लहरोंसे नीचे न उतरा हो-वह दूसरे के ऊपर उठी लहरोंके नीचे नहीं जा सकता। अर्जुन की सारी पीड़ा आत्म अज्ञान है।

प्रश्न : आचार्यश्री, यह भी लहर का एक भाग है। कृष्ण जब अर्जुन से यह कह रहे हैं कि मैं-तूँ और ये जन आदि पहले भी थे और बाद में भी होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है-अभी आपने बताया भी है कि आत्मा का (formless content) कन्टेन्ट का ही शरीर के-फॉर्म के बजाय महत्त्व है। लेकिन कहीं यह सम्भावना भी नहीं हो सकती है कि फॉर्म के बजाय कन्टेन्ट की संलग्न अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। घटकी आकृति के बगैर मृत्तिका का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : अभिव्यक्ति और अस्तित्व में फर्क है। existence और expression में फर्क है। जो अभिव्यक्त नहीं हैं-वह भी हो सकता है। एक बीज है, छिपा है वृक्ष उसमें, अभिव्यक्त नहीं है। लेकिन है-है इन अर्थों में कि हो सकता है। "है" इन अर्थों में-कि छिपा है। है इन अर्थों में-कि पोटेन्शियल है। अभी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के लेबोरेटरी में, डिलाबार प्रयोगशालामें, एक बहुत अनूठा प्रयोग चल रहा है। वैज्ञानिक प्रयोग है और वह प्रयोग मैं समझता हूँ इस समय चलने वाले प्रयोगों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वह प्रयोग यह है कि बहुत संवेदनशील कैमरे बीज में छिपे हुए उस वृक्ष का भी चित्र ले सकते हैं जो बीस साल बाद पूरा का पूरा

प्रकट होगा तो बहुत हैरानी की बात है। एक कली का चित्र लेते वख्त भूल से यह घटना घट गयी और विज्ञान की बहुत सी खोजें भूल से होती हैं क्योंकि वैज्ञानिक बहुत ट्रेडिशनल माइंड के होते हैं। वज्ञानिक बहुत कन्फर्मिस्ट होते हैं। वैज्ञानिक आमतौर से क्रांतिकारी नहीं होता। क्रांतिकारी कभी कभी वैज्ञानिक हो जाते हैं यह दूसरी बात है। लेकिन वैज्ञानिक आमतौर से क्रांतिकारी नहीं होता। वैज्ञानिक तो जितने विज्ञान जानता है-उसको जोर से पकड़ता है और किसी भी नयी चीज को प्रवेश नहीं करने देता। पिछले पूरे विज्ञान का इतिहास यह बताता है कि हर विज्ञान की नई खोज में बाकी वैज्ञानिकों ने जितनी बाधा डाली-उतनी किसी ने भी नहीं डाली।

तो अक्सर नयी घटना भूल से घटती है। वैज्ञानिक उसको कर नहीं रहा होता। अकस्मात होती है, accidental होती है। डिलेबार प्रयोगशालामें बहुत संवेदनशील कैमरों के साथ फूलों पर कुछ अध्ययन किया जा रहा है। और एक कली का फोटो लिया गया। लेकिन, कली का फोटो नहीं आया, लेकिन फोटो फूल का आया। कैमरे के सामने कली थी और कैमेरे से भीतर फूल आया। तब तो पहले तो यही ख्याल आया कि जरूर कुछ कैमरे की फिल्म में कुछ भूल हो गयी, कोई एक्सपोजर-exposer पहले हो गया है। कुछ न कुछ गलती हो गयी है। लेकिन, फिर भी फूल खिलने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। और जब फूल खिला तो बड़ी कठिनाई हो गयी। गलती कैमरे की फिल्म में नहीं हुई थी, गल्ती वैज्ञानिकों की समझमें थी। जब फूल खिला तो ठीक वह वैसा था, जैसा कि चित्र बना था। तब फिर इस पर आगे काम जारी हुआ और ऐसा समझा गया, कि जो कल होने वाला है बह भी किसी सूक्ष्म तरंगों के जगतमें इसी समय भी हो रहा है तभी कल हो पाएगा। एक बच्चा पैदा होता है-मां से। नौ महीने अंतगर्भमें छिपा होता है। किसी को पता नहीं क़्या हो रहा है ? नौ महीने बाद पैदा होता है। यह नौ महीने बाद अचानक नहीं आ जाता। नौ महीने इसने भीतर यात्रा की। एक कली जब फूल बनती है तो फूल बनने के पहले उसके आसपास की विद्युत तरंगें यात्रा करती है फूल बनने की। गर्भ में वह चित्र लिया जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि आज नहीं, कल हम एक बच्चे के चित्र से उसके बुढ़ापे का चित्र क्या ले सकेंगे ? मैं मानता हूँ कि ले सकेंगे। एक अर्थ में ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक आधार लेगा। अब तक ज़्योतिष वैज्ञानिक नहीं बन सका है। इस अर्थ में वैज्ञानिक बनेगा कि जो कल होने वाला है वह

आज ही किसी तल पर हो रहा है । हमें चाहे दिखाई पड़े चाहे नहीं दिखाई पड़े । कठिनाई कुछ ऐसी है कि मैं एक वृक्ष के नीचे बैठा हूँ । आप वृक्ष के ऊपर बैठे हैं । आप कहते हैं एक बैलगाड़ी रास्ते पर मुझे दिखाई पड़ रही है। मैं कहता हूँ मुझे दिखाई नहीं पड़ रही है । मैं कहता हूँ-कोई बैलगाड़ी नहीं है । रास्ता खाली है । जहाँ तक रास्ता मुझे दिखाई पड़ रहा है, रास्ता खाली है । मेरे लिए बैलगाड़ी भविष्य में है। future में झाड़पर आप बैठे हैं, आपके लिए वर्तमान में present है । आप कहते हैं बैलगाड़ी है। मैं कहता हूँ होगी, है तो नहीं । भविष्य में होगी । लेकिन आप कहते हैं वर्तमान में है । मुझे दिखाई पड़ रही है । फिर बैलगाड़ी मुझे भी दिखाई पड़ने लगती है । भविष्य से मेरे लिए भी वर्तमान आ जाता है । फिर रास्ते पर चली जाती है । थोड़ी देर में मुझे दिखाई पड़नी बन्द हो जातो है । अतीत में चली जाती है पर लेकिन झाड़पे आप कहते हैं कि मुझे अभी भी दिखाई पड़ रही है । मेरे (उसके) लिए अभी भी वर्तमान में है । मेरे लिए बैलगाड़ी भविष्य में थी, वर्तमान में हुई, अतीतमें हो गयी । आपके लिए एक ही Presentमें वर्तमान में चल रही है । आप जरा मुझसे ऊँचाईपर बैठे हैं और कोई खास फर्क नहीं है। जहां से कृष्ण देख रहे है-वह जो ऊँचाई से देखना है-from the peak. जहां से वे कह रहे हैं कि 'नहीं, कल भी थे, परसो भी थे, पहले भी थे, अभी भी हैं, कल भी होंगे, परसो भी होंगे ।' असल में कृष्ण जहाँ से देख रहे हैं-वहां Ever present है-वहां सब वर्तमान है । अर्जुन जहां से देख रहा है वहां से वह कहता है-क्या पता, जन्म के पहले थे या नहीं थे, मुझे पता नहीं, बस उसकी यात्रा जन्म तक जाती है । जन्म तक भी नहीं जाती । अगर आप ठीक से देखेंगे तो चार वर्ष से पहले की स्मृति आपको नहीं होगी । चार वर्ष से पहले की बात का अनुमान है-inference है । लोग कहते हैं कि आप थे । चार वर्ष तक आपकी स्मृति जाती है । जो बहुत बुद्धिमान है तीन वर्ष तक चली जाएगी । कोई और बहुत ही प्रतिभाशाली हुए तो दो वर्ष तक चली जाएगी । लेकिन दो वर्ष तक भी जाय-तो दो वर्ष तक आप थे ? आप कहते हैं-कुछ कहा नहीं जा सकता । अगर स्मृति ही आधार है तो दो वर्षके पहले आप नहीं थे । लेकिन अचानक कैसे हो जाएँगे अगर दो वर्ष तक न रहे हों । अगर याद आ जाय जन्म तक-दूसरे याद दिला देते हैं । पर, मां के पेट में भी आप थे । उसकी कोई स्मृति नहीं है । लेकिन,

गहरी हिप्नोसिसमें उसकी स्मृति भी आ जाती है । गहरे सम्मोहनमें व्यक्ति को बेहोश किया जाय, तो वह बता देता है कि वह तीन महीने का, जब मां के पेटमें था तो मां गिर पड़ी थी । बच्चे को भी चोट लगती है जब मां गिरती है तो । गर्भ की भी स्मृति आ जाती है । गर्भ के उस पार की भी स्मृति आ सकती है, पिछले जन्म की भी स्मृति आ सकती है, लेकिन वह हमारे लिए अतीत (past) हो गया । उसकी स्मृति जगानी पड़ेगी, वो अतीत होगा, कृष्ण के लिए सब शाश्वत वर्तमान है । THE ETERNAL NOW. अब ही है सब । वह जिस जगह से खड़े होकर देख रहे हैं, वह कहते हैं कि नहीं अर्जुन, पहले भी सब थे। बाद में भी सब होंगे । मैं भी था, तुम भी थे । यहां भी डर है कि भूल हो जाएगी। यहां भी डर यह है कि अर्जुन समझेगा कि मैं अर्जुन नामका व्यक्ति पहले भी था । कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं । अर्जुन नामका व्यक्ति कभी नहीं था पहले । हो नहीं सकता । अर्जुन नाम का व्यक्ति तो सिर्फ एक वस्त्र है । उस वस्त्र के पीछे जो छिपी है चेतना निराकार, वह थी । और, अर्जुन नामका व्यक्ति आज भी नहीं होगा । वह तो वस्त्र है । वह मौत के साथ खो जाएगा । हां, जिसपर टंगा है वस्त्र, वह आगे भी होगा । कृष्ण जो कह रहे हैं-अगर अर्जुन बहुत भी समझेगा, तो भी भूल हो जाने वाली है । वह भूल यह होगी कि वह ज्यादा से ज्यादा यही तो समझेगा, मैं 'अर्जुन' तुम 'कृष्ण'-हम पहले भी थे। ये जो लोग खड़े हैं-ये पहले भी थे। वह फिर वही पूछेगा-यह आकृतियां पहले कभी यही थीं ? आकृतियां कभी यही नहीं थीं । लेकिन आकृति अभिव्यक्ति है । अनाकृति, निराकार अस्तित्व, अभिव्यक्ति नहीं है । लेकिन, अस्तित्व अनन्त व्यक्ति का भी हो सकता है; अन्मेनिफेस्ट (unmanifest) भी हो सकता है । जो प्रकट है वही नहीं है । जो अप्रकट है, वह भी यही है । प्रकट हमें है ही क्या ? बहुत थोड़ा सा हमें प्रकट है । अगर हम वैज्ञानिकसे पूछें तो आज वैज्ञानिक कहने लगा कि हमारे सामने प्रकट बहुत थोड़ासा है । यहां हम बैठे हैं । आज से दो सौ साल पहले रेडियो तो नहीं था । आज रेडियो है । यहां हम रेडियो रखे हैं और उसे लगाते हैं-और लंदन की आवाज सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है । जब आप रेडियो पर बटन घुमाते हैं-तब लंदन से आवाज शुरू हो जाती है ! नहीं, लंदन की आवाज तो गुजरती ही थी पूरे वख्त । सिर्फ आपके पास रेडियो नहीं था जो पकड़े । जब नहीं सुन रहे थे, तब भी गुजर रही थी । manifest नहीं थी—

प्रकट नहीं थी। अप्रकट गुजर रही है। कान उसे नहीं पकड़ पाते थे। बस इतना ही। और भी हज़ारों आवाजें गुजर रही हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी आवाज का जो एक रेंज है, इतनी तरंगों तक हम सुनते हैं, इतनी तरंगों के नीचे भी नहीं सुनते-इसके ऊपर भी नहीं सुनते। हमारी सुनने की क्षमता की एक सीमा है-उसके पार बहुत कुछ गुजर रहा है, जो हमें सुनाई नहीं पड़ता है। वह है। उसके नीचे भी बहुत कुछ गुजर रहा है जो हमें सुनाई नहीं पड़ता। वह भी है। जो हमें दिखाई नहीं पड़ता वो भी है। अस्तित्व उतना ही प्रकट होता है-जितनी इंद्रियाँ हैं। समझ लें, एक अन्धा आदमी है उसके लिए प्रकाश का कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि अन्धे आदमी के लिए प्रकाश प्रकट होने में असमर्थ है क्योंकि अन्धे आदमी के पास कोई माध्यम नहीं है। जरा सोचें कि कहीं किसी न किसी ग्रह-उपग्रह ऊपर जरूर ऐसे प्राणी होंगे जिनके पास पाँच से ज्यादा इंद्रियाँ होंगी। तब हमको पहली दफे पता चलेगा-कि और भी चीजें हैं जगत में, जिनका हमें कुछ भी पता नहीं है क्योंकि पाँच इन्द्रियां कोई सीमा नहीं आ गयी। वैज्ञानिक कहते हैं कि कमसे कम ५० हजार ग्रहों पर जीवन है। कम से कम ५० हजार, ग्रहोंपर। कोई चार अरब ग्रहों उपग्रहों का पता है-उनमें कमसे कम ५० हजार पर जीवन के होने की सम्भावना है। इन पर अलग अलग तरह का जीवन विकसित हुआ होगा। कहीं सात इन्द्रियों वाले, कहीं पंद्रह इन्द्रियों वाले, कहीं बीस इन्द्रियों वाले होंगे। तो वे चीजें जान रहे होंगे जिन का हम सपना भी नहीं देख सकते क्योंकि सपना भी हम वही देख सकते हैं, जो हम जानते हैं। सपने में भी हम नहीं देख सकते-जो हम जानते नहीं। हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे कालिदास और हमारे भवभूति और हमारे रवीन्द्रनाथ कविता भी नहीं लिख सकते। कल्पना भी नहीं कर सकते उसकी-जो हमारी इंद्रियों के बाहर है। लेकिन वह है। चूंकि हमें नहीं दिखाई पड़ता इसलिए नहीं है ऐसा कहने का कोई भी कारण नहीं है। और फिर अभिव्यक्ति बहुत ऊपरी घटना है। अस्तित्व बहुत भीतरी घटना हैं, अस्तित्व घटना नहीं है; कहना चाहिए-अस्तित्व होना है-being है और अभिव्यक्ति happening घटना है। मैं यहाँ बैठा हूँ। मैं एक गीत गाऊं-जब तक मैंने गीत नहीं गाया था तबतक गीत मेरे भीतर कहाँ था? कहीं था? कोई फिजियालॉजिस्ट मेरे शरीर को काटपीटके गीत पकड़ पाता? कोई वैज्ञानिक, कोई मनोवैज्ञानिक, कोई

मस्तिष्क का सर्जन मेरे मस्तिष्क को काटके गीत की कड़ी पकड़ पाता? कहीं भी खोजने से मेरे भीतर गीत नहीं मिलता। लेकिन जो गीत मैं गा रहा हूँ-अगर वह मेरे भीतर नहीं था तो उसके आने का उपाय क्या है? वह अन्‌मेनिफेस्ट था। वह कहीं बीज था। वह कहीं छिपा था। वह कहीं सूक्ष्मतम तरंगों में था। वह कहीं अस्तित्व तो था। अभिव्यक्त नहीं था। फिर वह प्रकट हुआ है। फिर वह प्रकट हुआ है। प्रकट होनेसे वह हो गया है ऐसा नहीं है। प्रकट होनेके पहले भी था और ऐसा भी नहीं है कि वह पूरा प्रकट हो गया हो। क्योंकि प्रकट होनेमें भी मेरी सीमाएँ भी बाधा डालती हैं।

रवीन्द्रनाथ मरते दम तक कहते रहे कि जो गाना चाहता था वह गा नहीं पाया हूँ। लेकिन जिसको तुम गा नहीं पाए तो तुम्हें कैसे पता चला कि तुम उसको गाना चाहते थे, जरूर कहीं भीतर कुछ एहसास हो रहा है-कहीं कोई feeling है कि कुछ गाना था। जैसे कई बार आपको लगता है-लगता है कि किसीका नाम जबान पर रखा है और याद नहीं आता। बडे पागलपनकी बात कहते हैं आप-कि जबानपर रखा है और याद नहीं आता है। अगर जबान पर रखा है तो अब और याद आनेकी जरूरत क्या है? निकालिए जबान से। लेकिन, आप कहते हैं रखा तो जबान पर है लेकिन याद नहीं आता। क्या मतलब हुआ इसका? इसका मतलब इतना हुआ कि कहीं कोई एक सरकता एहसास है कि मालूम है। लेकिन, फिर भी मैनीफेस्ट नहीं हो पा रहा है। फिर भी अभिव्यक्त नहीं हो पा रहा है। मन पकड़ नहीं पा रहा है। कहीं एहसास है और अगर आप मर जाएँ या आपको काट डाला जाय, और हम आपके सब भीतर खोजबीन करें कि जो बिलकुल जबानपर रखा था वह कहाँ है? तो जबान मिल जाएगी, जबान पर रखा हुआ कुछ भी नहीं मिलेगा। मस्तिष्क मिल जाएगा, तन्तु मिल जाएँगे, हजारों, हजारों सेल-cell की व्यवस्था मिल जाएगी, काटपोट हो जाएगी। वह कहीं मिलेगा नहीं। कहीं अन्-अभिव्यक्त, अन्‌मेनिफेस्ट, कहीं छिपा है। कहीं अन्तरालमें, अस्तित्वमें दबा है। वह खो जायेगा। जो कृष्ण कह रहे हैं वो यह कह रहे हैं कि जो प्रकट हुआ है-वही तू नहीं है, वह जो अप्रकट रह गया है-वही तू है। और जो अप्रकट है-वह बहुत बड़ा है। और जो प्रकट हुआ है वह एक छोर भर है। अर्जुन! ऐसे छोर बहुत बार प्रकट हुए हैं-ऐसे छोर

बहुत बार प्रकट होते रहेंगे । खोते रहेंगे । लेकिन, वह जो अप्रकट है–वह अनन्त, वह जो अप्रकट है अनादि । वह जो अप्रकट है–असीम–वह कभी चुकता नहीं । सारी अभिव्यक्तियोंके बाद भी वह अनचुका, पीछे शेष, रह जाता है । निश्चित ही । अभिव्यक्त न होगा तो हम इन्द्रियोंसे उसे न पहचान पाऐंगे । हम इन्द्रियों से उसे न पहचान पाऐंगे क्योंकि इन्द्रियां सिर्फ अभिव्यक्तिको पकड़ती हैं । लेकिन हम इन्द्रियाँ ही नहीं हैं । और अगर हम इन्द्रियों के भीतर उतरने की कला सीख जायें तो जो अभिव्यक्त नहीं हैं वह भी पकड़ा जाता है। वह भी पहचाना जाता है। वह भी देखा जाता है । वह भी सुना जाता है । वह भी हृदयके किसी गहन तलपर स्पर्शित होता है। अभिव्यक्ति अस्तित्वकी अनिवार्यता नहीं है । अभिव्यक्ति अस्तित्वका खेल है । आकृति अस्तित्वकी अनिवार्यता नहीं है । आकृति अस्तित्वका खेल है । इसलिए कृष्ण, जगत को, जीवन को, एक लीला से ज्यादा नहीं कहते । और लीला का मतलब है–मंच पर कोई आया, राम बनकर आया। बस वह एक आकृति है । कोई रावण बनकर आया, वह एक आकृति है । वे धनुष बाण लेकर लड़ने खड़े हुए हैं । वह एक आकृति है। पर्दे के पीछे अभी थोड़ी देर बाद वे गपशप करेंगे, सीताको भूल जाएँगे । झगड़ा बंद हो जाएगा । चाय पिऐंगे ग्रीन रूम (green room) में बैठ कर । वह जो कृष्ण कह रहे हैं–वे ग्रीन रूमकी बात कह रहे हैं । और अर्जुन जो बात कह रहा है वह मंचकी बात कह रहा है । पर जो मंचपर प्रकट हुआ है–वह सिर्फ रूप है । वह सिर्फ अभिनय है । वह एक आकृति है । और आकृति के बिना अस्तित्व हो सकता है । लेकिन अस्तित्व के बिना आकृति नहीं हो सकती । जैसा मैंने कहा लहर नहीं हो सकती सागरके बिना । सागर, बिना लहरके हो सकता है । जब राम और रावण पर्देके पीछे जा के गपशप करके चाय पीने लगेंगे तब राम और रावण की जो आकृतियां बनी थीं–वे कहां हैं ? वे नहीं हैं ? वे लहरें थीं । वे सिर्फ आकार थे । जो पीछे प्राण न हों तो नहीं हो जाते हैं । रूप बदलता है। फार्म (Form) बदलता है–आकृतियां बदलती हैं। अभिनय बदलता है, अभिनेता नहीं, वह जो पीछे खड़ा है, वह नहीं । कृष्ण उसकी ही बात कर रहे हैं ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

अर्थ : किन्तु जैसे जीवात्माकी इस देहमें कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर पुरुष नहीं मोहित होता है, अर्थात जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्था रूप स्थूल शरीर का विचार अज्ञान से आत्मा में भासता है, वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होना रूप सूक्ष्म शरीर का विकार भी अज्ञान से ही आत्मामें भासता है, इसलिये तत्वको जाननेवाला धीर पुरुष इस विषय में नहीं मोहित होता है ॥१३॥

आचार्यश्री :

कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे इस एक शरीर में भी सब बदलाहट है; बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है, जन्म है, मृत्यु है, जैसे इस एक शरीर में भी कुछ स्थिर नहीं है; जैसे इस एक शरीर में भी सब अस्थिर है, सब बदला जा रहा है–बच्चे जवान हुए जा रहे हैं, जवान बूढ़े हुए जा रहे हैं, बूढ़े मृत्यु में उतरे जा रहे हैं । एक बड़े मजे की बात है । भाषा में पता नहीं चलता क्योंकि शब्दो में गति नहीं होती । शब्द तो ठहरे हुए स्थिर होते हैं–स्टेटिक, होते हैं । चूंकि, भाषा में शब्द ठहरे हुए होते हैं–जीवन के साथ भाषा बड़ा अनाचार करती है। जीवन में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं होता । न ठहरे हुए जीवन पर जब हम ठहरे हुए शब्दों को जड़ देते हैं तो बड़ी गलती हो जाती है । हम बोलते हैं यह बच्चा है, गलत बात बोलते हैं । बच्चा 'है' कि स्थितिमें कभी नहीं होता । बच्चा पूरे वक्त होने की स्थिति में होता है। हो रहा है । कहना चाहिए बच्चा "हो रहा है" हम कहते हैं–बूढ़ा है । गलत बात कहते हैं । "है" की स्थिति में कोई भी बूढ़ा नहीं होता है । बूढ़ा हो रहा है। प्रत्येक चीज हो रही है । है की स्थिति में कोई भी चीज नहीं है । Is की हालत में कोई भी चीज नहीं है । प्रत्येक चीज becoming में है । हम कहते हैं नदी है। कैसी गलत बात कहते हैं । नदी–और है हो सकती है ? नदी का मतलब ही यह है जो बह रही है, हो रही है । सब शब्द स्थिर हैं । और, जीवन में कहीं भी कुछ स्थिर नही है इसलिए जीवन के साथ बड़ी भूल हो जाती है । और इन शब्दों को दिनरात बोलते बोलते हम भूल जाते हैं । जब हम किसी आदमी को जवान कहते हैं । तो जवान का मतलब क्या होता है जीवनमें ? भाषा-कोष में नहीं । शब्दकोष में नहीं । शब्दकोष में तो जवान का मतलब जवान होता है । जिन्दगी में क्या होता है ? जिन्दगी में जवान का मतलब सिर्फ बूढ़े होने की तैयारी होता है; और कुछ नहीं होता । शब्दकोष में नहीं कहीं लिखा

है। ऐसा शब्दकोष में बूढे का मतलब बूढ़ा होता है। जिन्दगी में बूढे का मतलब मरने की तैयारी होता है। और तैयारी भी ऐसी नहीं कि हो गयी,-हो रही है। होती जा रही है। कृष्ण कह रहे हैं-इस जीवनमें भी अर्जुन, चीजें ठहरी हुई नहीं हैं। इस जीवन में भी जिन आकृतियों को तू देख रहा है, कल वे बच्चा थी, जवान हुई, बूढ़ी हो गयी। बड़े मजे की बात है-अगर माँ के पेट में जब पहली दफा बीजारोपण होता है उस सेल(cell)-उस कोष का चित्र ले लिया जाय और आप को बताया जाय कि आप यही थे ५० साल पहले तो आप मानने को राजी न होंगे-कि क्या मजाक करते हो? मैं और यह एक छोटा सा सेल जो नंगी आंख से दिखाई भी नहीं पड़ता है जिसको दुर्बिन से देखना पड़ता है, जिसमें न कोई आंख है, न कोई कान हैं, न कोई हड्डी हैं, जिसमें कुछ भी नहीं हैं। जिसका पता नहीं कि वह स्त्री होगी कि पुरुष होगा। जिसका पता नहीं यह छोटा सा बिंदु, यह काला धब्बा, यह मैं? मजाक कर रहे हैं। यह मैं कैसे हो सकता हूँ? लेकिन यह आप की पहली तस्वीर है। इसे अपने अलबम में लगा के रखना चाहिए। और अगर यह आप नहीं हैं तो जो तस्वीर आप की आज है वह भी आप नहीं हो सकते है क्योंकि कल वह भी बदल जाएगी। अगर हम एक आदमी की, पहले दिन पैदा हुआ तब की तस्वीर और जिस दिन मरता है-उस दिन की तस्वीर को आसपास रखें—क्या इन दोनों के बीच कोई भी तालमेल दिखाई पड़ेगा? कोई भी संबन्ध हम जोड़ पायेंगे? क्या हम कभी कल्पना भी कर पाऐंगे कि यह वही बच्चा है, जो पैदा हुआ था, वही यह बूढ़ा मर रहा है? नहीं, कोई संगति दिखाई पड़ेगी। बड़ी असंगत बात दिखाई पडेगी कि कहाँ यह और कहाँ यह? इसका कोई संबन्ध दिखाई नहीं पड़ता है। लेकिन इतने असंगत प्रवाह के लिए भी हम कभी चिंता, कभी विचार नहीं करते। कृष्ण यही विचार उठाना चाह रहे हैं अर्जुन में। वह यह कह रहे हैं कि जिन आकृतियों को तू कह रहा है-कि यह मिट जाएँगे इसका मुझे डर है। ये आकृतियाँ मिट ही रही हैं—यह चौबीस घन्टे मिटती ही रही हैं—ये सदा मिटने के क्रम में ही लगी हैं। आदमी पूरी जिन्दगी, सिवाय मरने के और कुछ करता ही नहीं है। उसकी सारी जिन्दगी मरने का ही एक लम्बा क्रम है। जन्म में जो शुरू होता है मृत्यु में वह पूरा होता है। जन्म की प्रक्रिया एक कदम है। मृत्यु की प्रक्रिया दूसरा कदम है और ऐसा भी नहीं है कि अचानक मौत एक दिन आ जाती है। मौत जन्म के

दिन से रोज रोज आती ही रहती है। तभी तो पहुँच पाती है-उसको ७० साल लग जाते हैं आप तक आने में। या ऐसा समझिए कि आपको सत्तर साल लग जाते हैं वहाँ तक पहुँचने में। लेकिन, यात्रा पहले दिन ही शुरू हो जाती है। यह सब बदल रहा है लेकिन फिर भी यह ख्याल नहीं आता कि इतनी बदलाहट के बीच मुझे यह ख्याल क्यों बना रहता है कि मैं वही हूँ जो बच्चे में था। मैं वही हूँ जो जवान में था, मैं वही हूँ जो बूढे में है। यह आइडेन्टिटी, यह तादात्म्य, इतनी बदलाहट के बीच यह सातत्य, यह स्मृति, यह 'रिमेंबरिंग' कहां बनी रहती है? किसे बनी रहती है? क्यों बनी रहती है? एक स्वर तो जरूर भीतर होना चाहिए-जो अनबदला है। अन्यथा कौन याद करेगा? मैं कहता हूँ-कि १० साल का था, तो ऐसी घटना घटी। मेरे भीतर जो दस सालमें था-वह जरूर किसी तल पर आज भी होना चाहिए। अन्यथा दस सालमें जो घटना घटी उसे मैं कैसे याद कर सकता हूँ? मैं तो नहीं; जो मैं आज हूँ यह तो मैं नहीं था। जो भी आज दिखाई पड़ता है-यह दस सालमें मैं नहीं था। किसे याद है? यह स्मृति का सूत्र कहाँ है? कोई जरूर मेरे गहरे में कोई कील होनी चाहिए-जिससे सब बदल गया है। रास्ते बदल गए। अनेक अनेक रास्तों पर वह रथ घूम चुका लेकिन कोई एक कील जरूर होनी चाहिये जिसने चक्के की हर स्थिति देखी है। चक्का खुद याद नहीं रख सकता। बदल रहा है पूरे समय। कोई अनबदला तत्त्व चाहिए। तो कृष्ण कह रहे हैं कि बचपन था, जवानी थी, बुढ़ापा था। यह सब बदलाहटके बीच कोई स्थिर, कोई नहीं बदलने वाला, कोई अपरिवर्तित, कोई अनमूविंग-unmoving तथ्य है—उसकी ही स्मृति जगाने की है। तब फिर हम ऐसा न कह सकेंगे कि मैं बच्चा था, फिर हम ऐसा न कह सकेंगे कि मैं जवान था, फिर हम ऐसा न कह सकें कि मैं बूढ़ा हूँ। नहीं, तब हमारी बात और होगी। तब हम कहेंगे कि मैं कभी बचपन में था; मैं कभी जवानी में था, मैं कभी बुढ़ापे में था; मैं कभी जन्मा; मैं कभी मरने में था; लेकिन यह जो मैं है यह इन सारी स्थितियों से ऐसे ही टूट जाएगा-जैसे कोई यात्री स्टेशनों से गुजरता है तो अहमदाबाद की स्टेशन पर नहीं कहता कि मैं अहमदाबाद हूँ। वह कहता है कि मैं अहमदाबाद की स्टेशन पर हूँ। बंबई पहुंचके वह यह नहीं कहता कि मैं बंबई हो गया हूँ। वह कहता हैं कि मैं बंबई के स्टेशन पर हूँ क्योंकि अगर वह बंबई हो जाय तो फिर अहमदाबाद कभी नहीं हो सकेगा। अहमदा-

बाद हो जाय तो फिर बम्बई कभी नहीं हो सकेगा । आप अगर बच्चे थे, तो जवान कैसे हो सकते हैं ? और अगर आप जवान थे तो बूढ़े कैसे हो सकते हैं ? निश्चित ही कोई आपके भीतर होना चाहिए जो बच्चा नहीं था । इसलिए बचपन भी आया, और गया जवानी भी आयी और गयी, बुढ़ापा भी आया और जायगा। जन्म भी आया । मृत्यु भी आयी । और कोई है जो इस सब के भीतर खड़ा है, और सब आ रहा है और जा रहा है-स्टेशन की तरह। अगर यह फासला दिखाई पड़ जाय कि जिन्हें हम अपना मान लेते हैं, वे केवल स्थितियाँ है। हमारे होना वहां से गुज़रा है, लेकिन हम वही नहीं है । उसके स्मरण के लिए कृष्ण कह रहे हैं ।

प्रश्न : आचार्यश्री, कभी कभी आत्मा, पूछते हैं—एक श्रेणी छोड़कर दूसरी बार अन्य श्रेणी में प्रवेश करता है। मरण और जन्म के बीच के समय में आत्मा का क्या केवल अस्तित्व रहता है या अभिव्यक्ति भी ? उस अवस्थामें आत्मा का स्वरूप कैसा होता है ?

उत्तर : एक शरीर को छोड़ने के बाद दूसरे शरीर में प्रवेश के बीच जो अन्तराल है इस अन्तराल में कोई अभिव्यक्ति भी होती है ? कि सिर्फ अस्तित्व होता है ? अभिव्यक्ति भी होती है । लेकिन, वह अभिव्यक्ति, जैसी अभिव्यक्ति से हम परिचित रहे हैं, शरीर के भीतर, वैसी नहीं होती । उस अभिव्यक्ति का माध्यम पूरा बदल जाता है । वह अभिव्यक्ति सूक्ष्म शरीर की अभिव्यक्ति होती है । उसे भी देखा जा सकता है। विशेष-ट्युनिंग में tuning में। जैसे रेडिओ सुना जा सकता है विशेष ट्यूनिंग में । उसे भी स्पर्श किया जा सकता है विशेष व्यवस्था से । लेकिन साधारण शरीर जिसे हम जानते हैं, वैसा शरीर तो हम दफना आते हैं-वह नहीं रह जाता । लेकिन वही अकेला शरीर नहीं है हमारे भीतर-उसके भीतर, और शरीर, और शरीर भी है । उसके भीतर शरीरों का एक जाल है । साधारण मृत्यु में सिर्फ पहला शरीर गिरता है । उसके पीछे छिपा दूसरा शरीर हमारे साथ यात्रा करता है । सूक्ष्म शरीर कहें । कोई भी नाम दे दें । astral body कह दें । कोई भी नाम दे दें। वह हमारे साथ यात्रा करता है । उस शरीर में ही हमारी सारी स्मृतियाँ, सारे अनुभव, सारे कर्म, सारे संस्कार, संग्रहित होते हैं । वह हमारे साथ यात्रा करता है । उस शरीर को देखा जा सकता है । बहुत कठिन नहीं है उसे देखना, बहुत कठिन नहीं है। बहुत

ही सरल है । और जैसे दुनिया आगे बढ़ी है सभ्यता ही में,-थोड़ा कठिन हो गया । अन्यथा इतना कठिन नहीं था । कुछ चीजे खो गयी हैं । हमें दिखाई पड़नी मुश्किल हो गयी है। सिर्फ़ हम आदी नहीं रहे उनको देखने के । उस दिशा से हमारे मन हट गए हैं। उस दिशा में हमने खोजबीन बन्द कर दी । अन्यथा वह सूक्ष्म शरीर बहुत सरलता से देखा जा सकता था । अभी भी देखा जा सकता है। और अभी तो वैज्ञानिक आधारों पर भी देखने की बड़ी सफल चेष्टाएँ की गयी हैं । उस सूक्ष्म शरीर के सैकड़ों हजारों चित्र भी लिए गए हैं । समस्त वैज्ञानिक उपकरणों से जांच भी की गई है। यहां हम इतने लोग बैठे हैं । हम इतने ही लोग नहीं बैठे हैं । अगर किसी दिन हम वैसा कैमरा बहुत ठीक से विकसित कर पाएँ-जो कि हो ही जाएगा-क्योंकि चित्र तो सूक्ष्म शरीरों के लिए ही जाने लगे हैं । और यहां का चित्र किसी दिन उस केमरे से लिया जाय, जो सूक्ष्म शरीरों को भी पकड़ता हो तो लोग इतने ही नहीं दिखाई पडेंगे जितने बैठे हैं । और भी बहुत से लोग दिखाई पडेंगे जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहे हैं ।

महावीर की सभाओं के लिए कहा जाता है कि उनमें बड़ी भीड़ होती थी । लेकिन, उस भीड़ में बहुत तरहके व्यक्ति सम्मिलित होते थे। उसमें वे तो सम्मिलित होते थे जो गांवोंसे सुनने आते थे । वे भी सम्मिलित होते थे-जो आकाश से सुनने आये थे। सदा सब जगह वे चेतनाएं भी मौजूद हैं । कभी वे चेतनाएँ अपनी तरफसे भी कोशिश करती हैं कि आपको दिखाई पड़ जाय । कभी वे चेतनाएं आप कोशिश करें तो भी दिखाई पड़ सकती हैं। लेकिन उनसे उनके दिखाई पड़ने का संबंध विशेष है । सामान्य नहीं है। बीच के एक शरीर से दूसरे शरीर की यात्रा में तो शरीर होता है । क्योंकि सूक्ष्म शरीर अगर न हो, तो नया शरीर ग्रहण नहीं किया जा सकता । सूक्ष्म शरीर को अगर विज्ञान की भाषामें कहें तो built in programme नये शरीर ग्रहण करने की योजना है । नहीं तो नए शरीर को ग्रहण करना मुश्किल हो जाएगा । आपने अबतक, इस जिंदगी तक जो भी संग्रह किया है,—संस्कार, अनुभव, ज्ञान, कर्म, जो भी आपने इकट्ठा किया है जो भी आप हैं-वह सब उसमें है । कभी

आपने देखा है। रात जब आप सोते हैं तो रात सोते समय जो आपका आखिरी विचार होता है वह सुबह उठते वक्त आपका पहला विचार होता है। नहीं देखा हो तो थोड़ा ख्याल करना। रात सोते वख्त नींद के उतरने के आखिरी क्षणमें-इधर नींद उतर रही है उस वख्त आपका जो विचार होगा वह सुबह जब नींद टूट रही तब आपका पहला विचार होगा। रात का आखिरी विचार सुबह का पहला विचार होगा। वह रातभर कहाँ था ? आप तो सो गए थे। अबतक उसे खो जाना चाहिए था। वह आपके सूक्ष्म शरीर में प्रतीक्षा कर रहा है। आप फिर उठे। वह फिर आपको पकड़े। जैसे ही यह शरीर छुटता है— आप एक बिल्ट-इन प्रोग्राम, जिंदगी भर की आकांक्षाओ, वासनाओं। कामनाओं का सब संग्रहित ब्ल्यूप्रिंट blueprint एक नक्शा अपने सूक्ष्म शरीरमें लेके यात्रापर निकल जाते हैं। वह नक्शा प्रतीक्षा करेगा जबतक आप नए शरीर को ग्रहण करें। जैसे ही शरीर ग्रहण होगा फिर जो संभावना शरीरमें उपलब्ध होने लगेगी, जिस-जिस चीज का अवसर बनने लगेगा वह सूक्ष्म शरीर उन चीज़ों को प्रकट करना शुरू कर देगा। लेकिन एक बार ऐसी मृत्यु भी होती है जब सूक्ष्म शरीर भी आपके साथ नहीं होता। वैसी मृत्यु को ही मुक्ति, वैसी मृत्यु को ही मोक्ष—उसके बाद सिर्फ अस्तित्व होता है। फिर कोई अभिव्यक्त शरीर नहीं होता। लेकिन साधारण मृत्युमें आपके साथ एक शरीर होता है। असाधारण मृत्यु है, वह महामृत्यु है। समाधिस्थ की होती है। जो इस जन्ममें समाधिको उपलब्ध होगा। उसका मतलब होता है कि उसने जीते जी अपने सूक्ष्म शरीर को विसर्जित कर दिया है। समाधिका मतलब ही यही है कि उसने जीतेजी अपने सूक्ष्म शरीर को विसर्जित कर दिया। बिल्ट इन प्रोग्राम तोड़ डाला। अब आगे के लिए, यात्रा के लिए जिसके पास कोई योजना न रहो। अब न कोई पंचवर्षीय योजना है उसके पास न कोई पांच जीवन को। अब उसके पास कोई योजना नहीं है। अब वह योजना मुक्त हो गया। अब इस शरीर के गिरते ही, उसके पास सिर्फ अस्तित्व रह जाएगा। अभिव्यक्ति नहीं। अभिव्यक्ति बन्धन है। क्योंकि अभिव्यक्ति पूरे की अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए थोड़ासा प्रकट होता है और जो अप्रकट रहता है, वह बेचैन होता है। हमारे प्राणोंमें जो स्वतन्त्रता की छटपटाहट है, हमारे प्राणोंमें जो मुक्ति की आकांक्षा है, वह इस कारण से है कि बड़ा थोड़ा-सा प्रकट हो रहा है। जैसे एक आदमी को सारे शरीरमें जंजीरें बांध दी है और सिर्फ एक अंगुली खुली छोड़ दी है।

वह अपनी अंगुली हिला रहा है। वह तकलीफ में पड़ा हुआ है। वह कहता है मुझे स्वतन्त्रता चाहिए। क्योंकि मेरा पूरा शरीर जकड़ा हुआ है। ऐसे ही हमारा पूरा अस्तित्व जकड़ा हुआ है। एक छोटे से द्वार से जरासी अभिव्यक्ति है। वह अभिव्यक्ति बन्धन मालूम पड़ती है। वह हमारी पीड़ा है। छटपटा रही है। लेकिन इस छटपटाहट के भी दो तरह के प्रयोग कर सकते हैं। या तो वह जो छोटासा द्वार है वह हमारा शरीर, उसी के माध्यम से हम अपनेको मुक्त करनेकी कोशिश में लगे रहें तो हम उसको बड़ा करेंगे। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, उसका मतलब सिर्फ यह है कि वह अपने शरीर को बड़ा बना रहा है। कोई और मतलब नहीं है। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, और बड़े मकानमें जरा लगता है कि थोड़ा मुक्त हुआ। स्पेस space बड़ी, जगह बड़ी हुई। छोटी कोठरी में ज्यादा बन्द मालूम होता था। बड़े मकानमें जरा खुला मालूम पड़ता है। लेकिन थोड़े दिनमें वह भी छोटा मालूम पड़ने लगता है। फिर, एक बड़ा महल बनाता है। थोड़े दिनमें वह भी छोटा मालूम पड़ने लगता है। असल में आदमी के पास इतना बड़ा अस्तित्व है कि पूरा आकाश भी छोटा है। इसलिए वह कितने ही बड़े मकान बनाता जाय सब छोटे पड़ जाएँगे। उसको इतनी स्पेस चाहिए, जितनी परमात्मा को मिली है। बस, इससे कममें न होगा इससे कम में काम नहीं चल सकता। वहां भी भीतर परमात्मा ही है। वह पूरी जगह चाहता है। वह असीम चाहता है। जहां कहीं कोई सीमा न आती हो। जहां भी सीमा आएगी वही बन्धन मालूम होगा। और, शरीर बहुत तरह की सीमाएँ बना लेता है। देखने की सीमा, सुनने की सीमा, सोचने की सीमा, सब चीज़ की सीमा है। और असीम है अस्तित्व और सीमित है अभिव्यक्ति। इसलिए अभिव्यक्ति से मुक्त होना हो संसार से मुक्त होना है। वह जिसको हम पुरानी भाषामें कहें आवागमन से मुक्त होना है। वह अभिव्यक्ति से मुक्त होना है। वह शुद्ध अस्तित्व की तलाश है। प्योर एक्जिस्टेंस pure existence की तलाश है। वह इस अस्तित्व की तलाश है—जहां अभिव्यक्ति नहीं होगी। बस, होना ही होगा। जस्ट बीइंग just being सिर्फ होना ही रह जाएगा। और कोई सीमा न होगी। सिर्फ होनेमें सीमा नहीं है। तो जिसदिन कोई समाधि को पाकर, सब बिल्ट-इन प्रोग्राम तोड़कर, अभिव्यक्ति की सारी आकांक्षायें छोड़कर, अभिव्यक्ति की सारी वासनाओं को छोड़कर, मरता है, उस दिन उसके पास फिर कोई शरीर

नहीं होता। फिर हम उसका फोटोग्राफ नहीं ले सकते। तो अभी पश्चिममें साइकिक सोसाइटिज में जो फोटोग्राफ लिए हैं-उन फोटोग्राफ में महावीर का फोटोग्राफ नहीं हो सकता। उस फोटोग्राफ में बुद्ध को नहीं पकड़ा जा सकता। उस फोटोग्राफी में कृष्णको नहीं पकड़ा जा सकता। उस फोटोग्राफमें उनको ही पकड़ा जा सकता है जो अभी बिल्ट--इन-प्रोग्राम लेके चले हैं। जिनके पास एक योजना है एक ब्ल्यूप्रिंट है शरीर का। उनको पकड़ा जा सकता है। महावीर का फोटोग्राफ नहीं पकड़ा जा सकता। कोई उपाय नहीं है। अस्तित्व का कोई भी चित्र नहीं लिया जा सकता। अस्तित्ववान् का चित्र लिया जा सकता है, अस्तित्व का कोई चित्र नहीं लिया जा सकता। अस्तित्व का कैसे चित्र होगा? क्योंकि अस्तित्व की कोई सीमा नहीं। चित्र उसी का हो सकता है जिसकी सीमा हो। तो साधारण मृत्युमें तो—पूछा है आपने-शरीर रहेगा, सूक्ष्म हो जाएगा। असाधारण मृत्युमें यौगिक मृत्युमें महामृत्युमें निर्वाण में, नहीं कोई शरीर रह जाता। सिर्फ अस्तित्व ही रह जाता है। नहीं कोई लहर रह जाती, बस सागर ही रह जाता है।

प्रश्न : पूछते हैं-वासनामय शरीर की शांति के लिए पुत्र पत्नी कुछ कर सकते है? क्योंकि गीता में भी पिण्डदान का उल्लेख आता है।

उत्तर : वासना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी ही है! दूसरा उसमें कुछ भी नहीं कर सकता। वासना मेरी; मेरी पत्नी कुछ नहीं कर सकती। हां, लेकिन, मेरी वासना के लिए करने के बहाने से अपनी वासना के लिए कुछ कर सकती है। पर वह दूसरी बात है। पति मर गया है। पत्नी अपने पति को वासना मुक्त करने की कोशिश करती है, प्रार्थना करती है, हवन करती है; पिण्डदान करती है, कुछ भी करती है। कोई आयोजन करती है। इससे उसके पति की वासना में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता है। लेकिन, उसकी स्वयं की वासना में अंतर पड़ सकता है और योजना का सिक्रेट (रहस्य) यही है। योजना पति की वासना मुक्ति के लिए नहीं हैं। क्योंकि पति की वासना मुक्ति अगर आप करवा दें, तब तो पतिको वासना भी पकड़ा सकते हैं आप। तब तो इस दुनियामें मुक्ति मुश्किल हो जायगी। महावीर मर जायें और महावीर की पत्नी वासना पकड़ाए, तो महावीर क्या करेंगे! क्योंकि जिसे हम मुक्त कर सकते हैं उसे हम बांध भी सकते हैं। तब तो मुक्ति भी बंधन बन जाएगी। तब तो मुक्ति भी असंभव है। नहीं, लेकिन राज़

दूसरा है, सिक्रेट दूसरा है, वह सिक्रेट साधारणतः खोला नहीं गया है। राज यह है कि पति मर गया है। पति के लिए तो पत्नी कुछ भी नहीं कर सकती। जिंदा में ही कुछ नहीं कर सकती, मरके करना तो बहुत मुश्किल है। दूसरे का अपना होना है-जिसमें हमारा कोई प्रवेश नहीं है। न पति का, न पत्नी का, न माँ का, न पिता का। लेकिन पति के बहाने वह जो करेगी अगर वह पति को वासना मुक्त करने की आकांक्षा से प्रार्थना करे तो यह प्रार्थना, यह आकांक्षा, यह वासना मुक्ति की कामना, उसकी अपनी वासना को तिरोहित करेगी। यह बडे मजे की बात हैं कि दूसरे की वासना जगाने में हम अपनी ही वासना जगाते हैं और दूसरे की वासना मिटाने में हम अपनी ही वासना मिटाते हैं। असलमें दूसरे के साथ जो हम करते हैं गहरे में अपने ही साथ करते हैं। सच तो यह है कि दूसरे के साथ सिर्फ किया जाने का दिखावा हो सकता है। सब करना अन्ततः अपने ही साथ है। उपयोगी है, लेकिन कृपा करके ऐसा मत सोचें कि वह जो दूसरा यात्रा पर निकल गया है, उसके लिए उपयोगी है। आपके लिए उपयोगी है। आपके लिए सार्थक है। लेकिन शायद ऐसा अगर कहा गया होता जैसे मैं कह रहा हूँ तो, शायद पत्नी प्रार्थना भी न करे। सोचेगी-ठीक है। लेकिन मरे हुए पति के लिए इतना करने की आकांक्षा उसके मनमें होती है कि शायद उनको सुगम मार्ग मिल जाय, आनंद की राह मिल जाय, स्वर्ग का द्वार मिल जाय। आकांक्षा होने का बुनियादी कारण है क्योंकि जिंदा रहके तो हम एक दूसरे को सिर्फ नर्क के द्वार तक पहुँचाते हैं। एक दूसरे को दुःख में धक्के देते हैं। इसलिए मरने बाद पछतावा शुरू repentence होता है। मरने के बाद पति पत्नीको जितना प्रेम करता हुआ दिखाई पड़ने लगता है ऐसा जिन्दगी में कभी नही किया था। repentence शुरू होता है। जीते के साथ जो किया था, उससे बिल्कुल उल्टा पल्ला शुरू हो जाता है। बाप के साथ बेटा जिंदा में जो कर रहा था, वह मरने के बाद कुछ और करने लगाता है। जिंदा में कभी आदर न दिया था। मरने के बाद तस्वीर, फोटो लगता है। फूल चढ़ाता है। जिंदा में कभी पैर न दबाये थे। मरने के बाद राख को समेट के गंगा ले जाता है। जिंदा बाप ने कहा होता कि गंगा ले चलो तो भूल के न ले गया होता। मरे बाप को गंगा ले जाता है। यह बहुत गहरे में हमारा जो जगत है इसमें हम जिंदा लोगों के साथ इतना दुर्व्यवहार कर रहे हैं कि सिर्फ मरों के साथ क्षमायाचना कर सकते हैं और कुछ नहीं। इसलिए पति के

लिए पत्नी कर सकती है। पति पत्नी के लिये कर सकता है। बेटा बाप के लिये कर सकता है, बेटा माँ के लिये कर सकता है। अपने लिये शायद नहीं भी करेगा। इसलिए एक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य को, एक बहुत गलत कारण देकर पकड़ाने की कोशिश की गयी है। वह सत्य केवल इतना है कि हम अपनी वासना को, दूसरे की शान्ति वासना के लिए किए गए प्रयास से अपनी वासना को शांत करने में स-क्षम होते हैं। पर, यह छोटी बात नहीं है। मगर यह जानकर ही की जानी चाहिए अब। और अब यह जानकर ही होगी। क्योंकि युग बदलता है, प्रौढ़ता बदलती है मस्तिष्क की। बच्चों को हम कह देते हैं, कि घर में मिठाई रखी हो तो कह देते हैं-भूत है कमरे में, मत जाना। कोई भूत नहीं होता है। मिठाई होती है। लेकिन मिठाई बच्चा ज्यादा न खा ले और बच्चे को अभी समझाने का कोई उपाय नहीं होता कि मिठाई ज्यादा खा लोगे तो नुकसान हो जाएगा तो भूत खड़ा करना पड़ता है। काम हो जाता है, भूत के वजह से बच्चा नहीं जाता है। लेकिन, बच्चा फिर जवान हो जाता है। अब इसको कहिए भूत है तो वह कहता है— रहने दो कोई फिकर नहीं। बल्कि भूत की वजह से और आकर्षण पैदा होता है और चला जाता है। शायद न भी जाता। अब तो उचित है कि इसे पूरी बात ही समझा दी जाय। आदमियत ने जो जो धारणाएं मनुष्यता के बचपन में निर्मित की थी-वे सभी की सभी अब अस्तव्यस्त हो गयी हैं। अब उचित है कि सीधी और साफ बात कह दी जाय। आज से पाँच हज़ार साल पहले जब गीता कही गयी होगी या और भी पहले-तो जो धारणाएँ मनुष्य के विकास की प्राथमिक अवस्थाओं में कही गयी थी वे अब सब हँसने योग्य हो गयी। अगर उन्हें बचाना हो तो उनके राज खोल देने जरूरी हैं। उन्हें सीधा साफ कर देना जरूरी है कि वो इसलिए भूत नहीं है कि मिठाई है। और मिठाई खाने के नुकसान क्या हैं वे साफ कह देने उचित है। मनुष्य प्रौढ़ हुआ है। और इसलिए मनुष्य सारी दुनिया में अधार्मिक दिखाई पड़ रहा है। यह मनुष्य की प्रौढ़ता है, अधार्मिकता नहीं है। असल में प्रौढ़, अडल्ट आदमी के लिए, अडल्ट ह्यूमेनिटी के लिए, प्रौढ़ हो गयी मनुष्यता के लिए, बचपन में दिए गए मनुष्यता के जो सिद्धान्त हैं अब उनकी आत्मा को फिर से नए शरीर देने की जरूरत है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

अर्थ : हे कुन्तीपुत्र! सर्दी गर्मी और सुख दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो क्षणभङ्गुर और अनित्य हैं, इसलिए हे भारतवंशी अर्जुन! उनको तू सहन कर।

आचार्यश्री :

जो भी जन्मता है, मरता है। जो भी उत्पन्न होता है वह भी नष्ट होता है। जो भी निर्मित होगा, वह बिखरेगा। समाप्त होगा। कृष्ण कह रहे हैं, इसे स्मरण रख भारत। इसे स्मरण रख-कि जो भी बना है, वह मिटेगा और जो भी बना है वह मिटेगा। जो जन्मा है, वह मरेगा। इसका अगर स्मरण हो-इसकी अगर याददाश्त हो, इसका अगर होश, अवेरनेस (awareness) हो तो उसको मिटानेके लिए दुःखका कोई कारण नहीं रह जाता। और जिसके मिटने से दुःखका कारण नहीं रह जाता उसके होनेमें सुखका कोई कारण नहीं रह जाता। हमारा सुख दुःख हमारी इस भ्रांतिसे जन्मते हैं कि जो भी मिला है, वह रहेगा। प्रियजन आके मिलता है तो सुख मिलता है। लेकिन जो आके मिला है-वह जाएगा। जहाँ मिलन है है वहाँ विरह। जो मिलन विरहको देख ले, उसके मिलनका सुख विलीन हो जाता है। उसके विरहका दुःख भी विलीन हो जाता है। जो जन्ममें मृत्युको देख ले, उसके जन्मकी खुशी विदा हो जाती है। उसको मृत्यु का दुःख विदा हो जाता है। और जहाँ सुख और दुःख विदा हो जाते हैं-वहाँ जो शेष रह जाता है-उसका नाम ही आनन्द है। आनन्द सुख नहीं है। आनन्द सुखकी बड़ी राशि का नाम नहीं है। आनन्द सुखके स्थिर होनेका नाम नहीं है। आनन्द मात्र दुःखका अभाव नहीं है। आनन्द मात्र दुःख से बच जाना नहीं है। आनन्द सुख और दुःख दोनों से ही उठ जाना है। दोनों से ही बच जाना हैं। असलमें सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो मिलनमें सिर्फ मिलनको देखता है, और विरहको नहीं देखता, वह क्षणभरके सुखको उपलब्ध होता है। फिर जो विरह में सिर्फ विरह को देखता मिलन को नहीं देखता, वह क्षणभर के दुःख को उपलब्ध होता और जब कि मिलन और विरह एक ही मेगनेट के दो पोल हैं। एक ही प्रक्रियाके दो हिस्से हैं। एक ही चीजके दो छोर है। इसलिए जो सुखी हो रहा है-उसे जानना चाहिए-वह दुःखकी ओर अग्रसर हो रहा है। जो दुःखी

हो रहा है-उसे जानना चाहिए वह सुखकी ओर अग्रसर हो रहा है। सुख और दुःख एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। और जो भी चीज़ निर्मित है-जो भी चीज़ बनी है-वह बिखरेगी। बनने में ही उसका बिनाश छिपा है, निर्मित होनेमें ही उसका विनाश छिपा है। जो व्यक्ति इस सत्यको पूराका पूरा देख लेता है-पूरा; हम आधे सत्य देखते हैं और दुःखी होते हैं। यह बड़े मजेकी बात है। असत्य दुःख नहीं देता; आधे सत्य दुःख देते हैं। असत्य जैसी कोई चीज़ है भी नहीं। क्योंकि असत्यका मतलब ही यह होता है जो नहीं है। सिर्फ आधे सत्य ही असत्य है। वह भी है इसलिए, कि वह भी सत्य का आधा हिस्सा है। पूरा सत्य आनन्द में ले जाता, आधा सत्य सुख-दुःख में डांवाडोल करवाता है। इस जगतमें असत्य से मुक्त नहीं होना है। सिर्फ आधे सत्यों से मुक्त होना है। यह ऐसा समझिए कि आधा सत्य ही-half truth असत्य है। और कोई असत्य है नहीं। असत्यको भी खड़ा होना पड़े-तो सत्यके ही आधार पर खड़ा होना पड़ता है। वह अकेला खड़ा नहीं हो सकता। उसके पास अपने कोई पैर नहीं हैं। कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से-तू पूरे सत्यको देख। तू आधे सत्यको देखकर विचलित, पीड़ित, परेशान हो रहा है-वह किसी न किसी आधे सत्य से परेशान होगा। जहाँ भी दुःख है जहाँ भी सुख है बहां आधा सत्य होगा। और आधा सत्य पूरे समय पूरा सत्य बननेकी कोशिश कर रहा है। तो जब आप सुखी हो रहे हैं, तभी आपके पैरके नीचे से जमीन खिसक गयी है-और दुःख आ गया है। जब आप दुःखी हो रहे है, तभी जरा गौरसे देखें-आसपास कहीं दुःखके पीछे सुख छायाकी तरह आरहा है। इधर सुबह होती है-सांझ होती है; इधर दिन निकलता है, उधर रात होती है। इधर रात है, उधर दिन तैयार हो रहा है। जीवन पूरे समय अपने से विपरीतमें यात्रा है। जीवन पूरे समय अपने से विपरीत में यात्रा है। एक छोर से दूसरे छोर पर, लहरें जा रही हैं। कृष्ण कहते हैं, भारत ! पूरा सत्य देख। पूरा तुझे दिखाई पड़े, तो तू अनुद्विग्न हो सकता है।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृत्वाय कल्पते ॥१५॥

अर्थ : क्योंकि हे श्रेष्ठपुरुष ! दुःख-सुखको समान समझने वाले जिस धीर पुरुषको यह इन्द्रियोंके विषय व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्षके लिए योग्य होता है।

आचार्यश्री :

विरोधी ध्रुवोंमें बंटा हुआ जो हमारा अस्तित्व है, इन दोनोंके बीच, इन दोनोंकी आकृतियोंके भेदको देखकर, इनके भीतरकी अस्तित्वकी एकता को जो अनुभव कर लेता है, ऐसा व्यक्ति ही ज्ञानी है। जिसे जन्ममें मृत्युकी यात्रा दिखाई पड़ जाती है; जिसे सुखमें दुःखकी छाया दिखाई पड़ जाती है; जिसे मिलनमें विरह आ जाता है जिसके पास, जो प्रतिपल विपरीतको मौजूद देखनेमें समर्थ हो जाता है, वैसा व्यक्ति ही ज्ञानी है। देखनेमें समर्थ हो जाता है। ख्याल रखना जरूरी है। ऐसा माननेमें समर्थ हो जाता है, तो ज्ञानी नहीं हो जाता है। मान लिया ऐसा-तो काम नहीं चलता है। माने हुए सत्य अस्तित्वके जरासे धक्केमें गिर जाते हैं-और बिखर जाते हैं। जाने हुए सत्य ही जीवनमें नहीं बिखरते। जो ऐसा मान लेता है; ऐसा देख लेता है; या कहे, कि ऐसा अनुभव कर लेता है-और बड़े मजेकी बात है, अनुभव करने कहीं दूर जानेकी जरूरत नहीं है। जिंदगी रोज मौका देती है, प्रतिपल मौका देती है। ऐसा कोई सुख जाना है आपने, जो दुःख न बन गया हो-ऐसा कोई सुख सारा जीवनमें-जो दुःख न बन गया है ? ऐसी कोई सफलता जानी है; जो विफलता न बनी है ? ऐसा कोई यश जाना है जो अपयश न बन गया हो।

लाओ-त्से कहा करता था कि मुझे जीवनमें कभी कोई हरा नहीं पाया। मर रहा था, आखिरी क्षण है। तो शिष्योंने पूछा-वह राज हमें भी बता दो। क्योंकि चाहते तो हम भी हैं कि जीतें और कोई हमें हरा न पाए। जरूर बता दें जाने से पहले वह राज, वह सिक्रेट। लाओत्से हंसने लगा-उसने कहा-तुम गलत आदमी हो। तुम्हें बताना बेकार है। तुमने मेरी पूरी बात भी न सुनी और बीचमें ही पूछ लिया। मैं इतना ही कह पाया था कि मुझे जिन्दगी में कोई हरा नहीं पाया। तुमने इतना जल्दी ही पूछ लिया। पूरी बात तो सुन लो। आगे मैं कहने वाला था-मुझे जिंदगीमें कोई हरा नहीं पाया-क्योंकि मैंने जिंदगी में किसी को जीतना नहीं चाहा। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ गया-कि जीता, कि हारनेकी तैयारी की। इसलिए मुझे कोई हरा नहीं पाया; क्योंकि मैं कभी जीता ही नहीं। उपाय ही न रहा मुझे हराने का। मुझे हराने वाला आदमी ही नहीं इस पृथ्वी पर. कोई हरा ही नहीं सकता था-क्योंकि मैं पहलेसे ही हारा हुआ था। मैंने जीतने की कोई चेष्ट

ही नहीं की। लेकिन तुम कहते हो कि हम भी जीतना चाहते हैं। और हम भी चाहते हैं कि कोई हमें हरा न पाएं। तो तो तुम हारोगे। क्योंकि जीत और हार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि ऐसा जो देख लेता है। और देखने का-ध्यान रखें-यह देखना एक एक्जिस्टेन्शियल-existential अनुभव है। यह अस्तित्वगत अनुभव है। हम रोज जानते हैं-लेकिन पता नहीं कैसे चुक जाते हैं देखनेसे। कैसे अपनेको बचा लेते हैं देखनेसे? शायद, कोई बड़ी ही चालाकी हम अपने साथ करते हैं। अन्यथा ऐसा जीवन-सत्य दिखाई न पड़े यह आश्चर्य है। रोज़ अनुभव में आता है। सब चीजें अपने से विपरीत में बदल जाती हैं। ज्यादा गहरी मित्रता करें और शत्रुता जन्मनी शुरू हो जाती है। लेकिन तरकीब क्या है हमारी इससे बच जाने की? तरकीब हमारी-यह है कि हम जब मित्र शत्रु बनने लगता है-तो ऐसा नहीं समझते मित्रता शत्रुता बन रही है। हम समझते हैं मित्र शत्रु बन रहा है। बस, वहीं भूल हो जाती है। जब एक मित्र शत्रु बनने लगता है तो हम समझते हैं-मित्र शत्रु बन रहा है। दूसरा कोई मित्र होता तो नहीं बनता। यह आदमी दगाबाज था। तीसरा कोई मित्र होता तो नहीं बनता-यह आदमी दगाबाज था। यह दूसरा मित्र-आप भी उसके शत्रु बन रहे हैं। वह भी यही सोचता है कि यह आदमी गलत आदमी चुन लिया। ठीक आदमी होता तो कभी ऐसा नहीं होनेवाला था। मित्र जब शत्रु बनता है तब हम सत्य से वंचित रह जाते हैं। सत्य है कि मित्रता शत्रुता बन जाती है लेकिन हम मित्रपे थोप के फिर दूसरे मित्रकी तलाशमें निकल जाते हैं।

एक आदमीने अमेरिकामें ८ बार शादियाँ की। मगर होशियार आदमी होगा। पहली शादी-सालभर बाद तलाक किया। देखा कि पत्नी गलत है। कोई अनहोनी बात नहीं देखी-सभी पति देखते हैं, सभी पत्नियाँ देखती हैं-देखा कि पत्नी गलत है, चुनाव गलत हो गया। तलाक कर दिया। फिर दूसरी पत्नी चुनी। ६ महीने बाद पता चला कि फिर गलत हो गया। ८ बार जिन्दगीमें शादी की लेकिन मैंने कहा-आदमी होशियार होगा। क्योंकि ८ बारकी भूलसे भी जो ठीक सत्य पर पहुँच जाय, वह भी असाधारण आदमी है। ८ हजार बार करके भी नहीं पहुँचते क्योंकि हमारा तर्क तो वही रहता है हरबार। आठ बारके बाद उसने शादी नहीं की। और

उसके मित्रोंने पूछा कि तुमने शादी क्यों न की? तो उसने कहा कि ८ बार में एक अजीब अनुभव हुआ-कि हर बार जिस स्त्रीको मैं ठीक समझके लाया-वह पीछे गलत साबित हुई। तो पहली दफा मैंने सोचा-वह स्त्री गलत थी। दूसरी दफा सोचा-वह स्त्री गलत थी। लेकिन तीसरी दफे शक पैदा होने लगा। चौथी दफे तो बात बहुत साफ दिखाई पड़ने लगी। फिर भी मैंने कहा-एक दो प्रयोग और कर लेने चाहिए। आठवीं बार बात स्पष्ट हो गयी कि सवाल स्त्रीके गलत और सही होने का नहीं है। जिससे भी सुख चाहा उससे दुःख मिलेगा। जिससे भी सुख चाहा, उससे दुःख मिलेगा। क्योंकि सब सुख, दुःख में बदल जाते हैं। जिससे भी मित्रता चाही, उससे शत्रुता मिलेगी। क्योंकि सभी मित्रताएँ शत्रुताओंकी शुरुआत हैं। युक्ति (trick) कहाँ है मन की? धोखा कहाँ है? तरकीब कहाँ है? तरकीब है-अनुभूतिके सत्यकी, स्थितिके सत्यको हम व्यक्तियों पर थोप देते हैं। फिर नया व्यक्ति खोजने निकल जाते हैं। साइकल नहीं है घरमें, साइकल खरीद ली। फिर पाते हैं, कि सोचा था बहुत सुख मिलेगा, नहीं मिला। लेकिन तब तक यह ख्याल भी नहीं आता, कि जिस साइकलके लिए रात-रात भर सपने देखे थे कि मिल जाय तो बहुत सुख मिलेगा, अब बिल्कुल नहीं मिल रहा है। लेकिन वह बात ही भूल जाते हैं। तब तक हम कार मिल जाय तो-उसके सुखमें लग जाते हैं। फिर, कार भी मिल जाती है। फिर भूल जाते हैं--कि जितना सुख सोचा था, उतना मिला नहीं-वह कभी मिलता नहीं। मिलता है दुःख, खोजा जाता है सुख। मिलती है घृणा खोजा जाता है प्रेम। मिलता है अन्धकार; यात्राकी जाती है सदा प्रकाशके लिए। लेकिन इन दोनोंको हम कभी जोड़के नहीं देख पाते। इस गणितको हम कभी पूरा नहीं कर पाते। उसका एक कारण और भी ख्यालमें ले लेना जरूरी है। क्योंकि दोनोंके बीचमें टाइम गेप time-gap होता है। इसलिए हम नहीं जोड़ पाते। अफ्रीकामें जब पहली दफा पश्चिमके लोग पहुँचे तो बड़े हैरान हुए। क्योंकि अफ्रिकनोंमें यह ख्याल ही न उठा कि बच्चोंका संभोगसे कोई संबन्ध है। उनको पता ही नहीं था इस बातका कि बच्चेका जन्म संभोग से किसी भी तरह जुड़ा हुआ है। टाइम-गेप बड़ा है। एक तो सभी संभोगसे बच्चे पैदा नहीं होते। दूसरे नौ महीने का फर्क पड़ता है। अफ्रीकामें ख्याल ही नहीं था कबीलोंमें-कि बच्चेका कोई संबन्ध संभोगसे है, संभोगसे कोई लेना देना नहीं।

कॉज और इफेक्टमें cause and effect इतना फासला जो है–कारण–नौ महीने कार्य–नौ महीने बाद, तो जोड़ नहीं हो पाता। सुखको जो हम पकड़ते हैं–जब तक पहले, वह दुःख बनता है तब तक बीचमें टाइम गिरता है, समय गिरता है। तब हम जोड़ नहीं पाते कि ये दोनों बिन्दु जुड़े हैं। यह वही सुख है जो अब दुःख बन गया। नहीं, वह हम नहीं जोड़ पाते। मित्रको शत्रु बननेमें समय लगेगा न, आखिर कुछ भी बननेमें समय लगता है। तो जब मित्र बना था तब और जब शत्रु बना तब–तब बर्षों बीचमें गुजर जाते हैं। जोड़ नहीं पाते कि मित्र बननेमें और शत्रु तक पहुँचनेमें इतना वख्त लगा है। नहीं, मित्र बननेकी घटना अलग; और शत्रु बननेकी घटना अलग, तब तय नहीं कर पाते। तब व्यक्ति पर ही थोप देते हैं–कि गलती व्यक्तिके साथ हो गई। कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि तू आरपार देख, पूरा देख और जो इस पूरेको देख लेता है वह ज्ञानी हो जाता है। और ज्ञानीको फिर ठण्डा और गरम, सुख और दुःख, पीड़ा नहीं देते। लेकिन इसका यह मतलब मत समझ लेना कि ज्ञानी को ठण्डे और गरम का पता नहीं चलता है। ऐसी भ्रांति हुई है–इसलिए मैं कहता हूँ। ऐसी भ्रांति हुई तब तो वह ज्ञानी न हुआ–जड़ हो गया। अगर संवेदन-शीलता–sensitivity मर जाय–तो उसको पता ही न चले। तो कई जड़–बुद्धि ज्ञानी होनेके भ्रममें पड़ जाते हैं। तो उनको ठण्डी और गर्मी का पता नहीं चलता। थोडे अभ्याससे पता नहीं चलेगा। इसमें कोई कठि-नाई तो नहीं है। लेकिन इससे कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। ध्यान रहे–ज्ञानीको ठण्डे और गर्मसे सुख और दुःखसे पीड़ा नहीं होती। सुख और दुःखमें चुनाव नहीं रह जाता। चुनाव choice नहीं रह जाती। चोइसलेसनेस choice-lessness हो जाती है। इसका यह मतलब नहीं कि दिखाई नहीं पड़ता। इसका यह मतलब नहीं है—कि ज्ञानीको सुई चुभाएँ तो पता नहीं चलेगा। इसका यह मतलब नहीं है—कि ज्ञानीके गलेमें फूल डालें तो सुगन्ध न आएगी—और दुर्गन्ध फेंकें तो दुर्गन्ध न आएगी। नहीं, सुगन्ध और दुर्गन्ध–दोनों आएँगीं। शायद आप से ज्यादा आएँगीं। उसकी संवेदनशीलता आपसे ज्यादा होगी। उसकी sensitivity ज्यादा होगी क्योंकि वह अस्तित्वके प्रति ज्यादा सजग होगा। क्षण के प्रति ज्यादा जागा होगा। उसकी अनुभूति आपसे तीव्र होगी। लेकिन वह यह जानता है कि सुगन्ध और दुर्गन्ध गन्धके ही दो छोर हैं। कभी जहाँ सुगन्ध बनती है—उस फैक्टरी factory के पाससे गुजरें

तो पता चल जाएगा। असलमें दुर्गन्ध को ही सुगन्ध बनाया जाता है। खाद डाल देते हैं—और फूलमें सुगन्ध आ जाती है। सुगन्ध और दुर्गन्ध गन्धके ही दो छोर हैं। गन्ध अगर प्रीतिकर लगती है–तो सुगन्ध मालूम होती है। गन्ध अप्रीतिकर लगती है–तो दुर्गन्ध मालूम पड़ती है। ऐसा नहीं है कि ज्ञानी को पता नहीं चलता कि क्या सौन्दर्य है और क्या कुरूप है। बहुत पता चलता है। लेकिन यह भी पता चलता है कि सौन्दर्य और कुरूप–आकृतियों के दो छोर हैं। एक ही लहरके दो छोर हैं। इसलिए पीड़ित नहीं होता है। डांवाडोल नहीं होता। अस्थिर नहीं होता। सन्तुलन नहीं खोता। लेकिन इससे बड़ी भ्रांति हुई है। और वह भ्रांति यह हुई है कि जिस आदमीको ठण्डी गर्मीका पता न चले वह ज्ञानी हो गया। यह बहुत आसान है। वह काम बहुत कठिन है जो मैं कह रहा हूँ। ठंडी गर्मीका पता न चले इसलिए तो थोड़ासा ठंडी गर्मीका अभ्यास करनेकी जरूरत है। अभ्याससे–ठंडी गर्मीका पता नहीं चलेगा–चमड़ी जड़ हो जाएगी। उसका बोध कम हो जाएगा। जरा नाकमें नासा–पुटोंमें जो थोड़ेसे गन्धके तंतु हैं–अगर दुर्गन्धके पास बैठे रहें–वह अभ्यासी हो जायेंगे। तो 'परमहंस' भी हो जाते हैं लोग दुर्गन्धके पास बैठ कर। नासमझ उनके चरण भी छूते हैं कि वाह 'परमहंस'–कि दुर्गन्ध का पता नहीं चलता। किस भंगीको पता चलता है? नासा–पुट नष्ट हो जाते हैं—लेकिन इससे भंगी परमहंस नहीं हो जाते।

खलिल जिब्रान ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। जिब्राननें लिखा है–कि गांव से, देहात से, एक औरत शहर आयी–मछलियाँ बेचने। मछलियाँ बेच दी। हो रही थी शाम तो गांवकी उसकी सहेली थी शहरमें। गाँव की ही लड़की थी। उसने उसे ठहरा दिया। आज रात रुक जा। वह मालिन थी–माली की पत्नी थी। बगिया थी सुन्दर उसके पास। फूल ही फूल थे। मेहमान घरमें आया–और गरीब मालिन,–उसके पास कुछ और तो न था। उसने बडे फूल मोगरे के, गुलाब के, जूही के, चमेली के उसके चारों तरफ लाके रख दिये पर रात उसे नींद न आ सकी। वो करवट बदले बदले और नींद न आये। मालिनने उसे पूछा कि नींद नहीं आती–कोई तकलीफ? उसने कहा–तकलीफ है कि यह फूल हटाओ और मेरी टोकरी–जिसमें मछलियाँ लायी थी वह टोकरी मुझे दे दो। थोड़ा पानी छिड़क दो उसके ऊपर। और मेरे पास रख दो। उसने कहा–तुम पागल तो नहीं हो? तो उसने कहा–

मुझे नींद आ जाएगी । फूल हटा दिया गया, गन्दी टोकरी पानी छिड़क कर उसके पास रख दी गयी । फिर वह गहरी नींद में खर्राटें लेने लगो । मछलियों की गन्ध उसके लिए सुगन्ध हो गयी थी ! फूलों की गन्ध अपरिचित थी-असहनीय थी, इसलिये मुश्किल थी । इसलिये मुश्किल हो जाती है अपरिचित के साथ । अपरिचित कमरा हो, अपरिचित मकान हो तो मुश्किल हो जाती है । अपरिचित फूल थे । मछलियां उसका ही हिस्सा थीं । लेकिन इससे कोई कुछ परमहंस नहीं हो जाता । ठण्डी और गर्मी का पता न चले तो कोई ज्ञानी नहीं हो जाता । सुख-दुःख का पता न चले तो कोई ज्ञानी नहीं हो जाता । सुख-दुःख का पूरी तरह पता चले और फिर भी सुख-दुख संतुलन न तोड़े । सुख दुःख का पूरी तरह पता चले-लेकिन सुखमें भी दुःख की छाया दिखे । दुःख में भी सुख की छाया दिखे, सुख दुःख आरपार Transparent दिखाई पड़ने लगे तो व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥१६॥

अर्थ : और हे अर्जुन ! असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है, इस प्रकार इन दोनों को ही तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है ।

आचार्यश्री :

क्या है सत्य ? क्या है असत्य ? उसके भेद को पहचान लेना ही ज्ञान है, प्रज्ञा है । किसे कहें-है, और किसे कहें-नहीं है । इन दोनों की भेदरेखा को खींच लेना ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । क्या है स्वप्न और क्या है यथार्थ-इसके अन्तर को समझ लेना ही मुक्ति का मार्ग है । कृष्णने इस वचनमें कहा है जो है और सदा है और जिसके न होने का कोई उपाय नहीं है । जिसके न होने की कोई संभावना ही नहीं है-वही सत् है, वही real है । जो है, लेकिन कभी नहीं था, और कभी फिर नहीं हो सकता है; जिसके न हो जानेकी संभावना है वही असत् है, वही unreal है । यहां बहुत समझ लेने जैसी बात है । साधारणतः असत् अनरियल, unreal हम उसे कहते हैं जो नहीं है । लेकिन जो नहीं है उसे तो असत् कहने का भी कोई अर्थ नहीं है । जो नहीं है उसे तो कुछ भी

कहने का कोई अर्थ नहीं है । जो नहीं है उसे इतना ही कहना कि वह नहीं है,-गलत है । क्योंकि हम है शब्द का प्रयोग कर रहे हैं । जब हम कहते हैं नहीं है-तब भी हम 'है' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं । जो नहीं है उसके लिए "नहीं है" कहना भी गलत है । जो नहीं है, वह नहीं ही है । उसकी कोई बात ही अर्थहीन है । इसलिए असत्य का अर्थ non-existence नहीं होता है । असत्य का अर्थ होता है जो नहीं है, फिर भी है । जो नहीं है फिर भी होने का भ्रम देता है । जो नहीं है फिर भी प्रतीत होता है कि है । रात स्वप्न देखा है । यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है । नहीं था तो देखा कैसे ? नहीं था तो स्वप्न भी तो हो सके यह संभव नहीं है । देखा है । जीया है । गुजरे हैं । लेकिन सुबह उठके कहते हैं कि स्वप्न था । यह सुबह उठके जिसे स्वप्न कहते हैं उसे बिल्कुल नहीं-non-existent नहीं कहा जा सकता । था तो जरूर । देखा है, गुजरे हैं और ऐसा भी नहीं था कि जिसका परिणाम नहीं हुआ हो; जब रात स्वप्न में भयभीत हुए हैं तो काँप गए हैं । असली शरीर काँप गया है-प्राण काँप गए हैं । रोयें खड़े हो गए हैं । नींद भी टूट गयी है । स्वप्न में, तो भी छाती धड़कती रही है । जाग के देख लिया है कि स्वप्न था । लेकिन छाती धड़कती जा रही है । हाथ पैर काँपे जा रहे हैं । वह जो स्वप्न बिल्कुल ही नहीं होता तो उसका कोई भी परिणाम नहीं हो सकता था लेकिन उस अर्थ में नहीं था-जिस अर्थ में जाग के जो दिखाई पड़ता है, वह है । उसे किस कोटी में रखें ? न होने की, होने की ? उसे किस जगह रखें ? था जरूर और फिर भी नहीं है । असत् की जो केटेगरी category है, unreal की जो कोटी है, वह अन्-अस्तित्व की कोटी नहीं है । unreal असत् की कोटी, अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच की कोटी है । ऐसा सत्य जो सत्य मालूम पड़ता है लेकिन नहीं है । लेकिन हम यह कैसे जानेंगे ? क्योंकि स्वप्न में तो पता नहीं पड़ता कि जो हम देख रहे हैं वह नहीं है । स्वप्न में तो मालूम होता है जो देख रहे हैं वह बिल्कुल है और ऐसा नहीं हैं कि पहली दफा स्वप्न देखने में ऐसा मालूम पड़ता हो । जीवनभर स्वप्न देखकर भी, और रोज सुबह जाग कर भी; जानकर कि नहीं था-आज रात फिर स्वप्न आएगा तब स्वप्न में पूरी तरह लगेगा कि है । लगता है पूरी तरह, कि है । भासता है पूरी तरह कि है फिर भी सुबह जाग कर पाते हैं कि नहीं-यह जो appearance है-भासता है, यह जो दिखाई पड़ना है, यह जो होने जैसा धोखा है इसका

नाम असत्य है । संसार को जब असत्य कहा है-तो उसका यह अर्थ नहीं है कि संसार नहीं है । उसका इतना ही अर्थ है कि चेतना की ऐसी अवस्था भी है जब हम जागने से भी जागते हैं । अभी हम स्वप्न से जागकर देखते हैं कि स्वप्न नहीं है । लेकिन, जब हम जागने से भी जागकर देखते हैं तो पाते हैं-जिसे जागने में जाना था वह भी नहीं । जागने से भी जाग जाने का नाम समाधि है । जिसे अभी हम जागना कह रहे हैं जब इससे भी जागते हैं - तब पता चलता है कि जो देखा था वह भी नहीं है । तो कृष्ण कह रहे हैं-जिसके आगे पीछे न होना हो, और बीच में होना हो वह असत्य है । जो एक समय था कि नहीं था, और एक समय आता है कि नहीं हो जाता है-उसके बीच की जो घटना है, बीच की जो happening है-दो न होने के बीच जो होना है-उसका नाम असत्य है । उसका नाम unreal है । लेकिन जिसका न होना है ही नहीं, जिसके पीछे भी होना है, बीच में भी होना है, आगे भी होना है; जो तीनो तलों पर है ही, सोएँ तो भी है, जागें तो भी है, जागकर जागें तो भी है; निद्रा में भी है, जागरण में भी है, समाधि में भी है, जो चेतना की हर स्थितिमें ही है-उसका नाम सत्य है और ऐसा जो सत्य है, वह सदा है, सनातन है, अनादि है, अनन्त है । जो ऐसे सत्य को पहचान लेते हैं, वे बीच में आने वाले असत्य के भवन को, असत्य की लहरों को देखकर न सुखी होते हैं, न दुःखी होते हैं । क्योंकि वे जानते हैं जो क्षणभर पहले नहीं था, वह क्षणभर बाद नहीं हो जाएगा । दोनों ओर न होने की खाई है, बीच में होनेका शिखर है तो स्वप्न है । तो असत्य है, दोनों ओर होने का ही विस्तार है अन्तहीन तो जो है, वह सत्य है । कसौटी है । कृष्ण कीमती कसौटी हाथमें देते हैं । उससे सत्यकी परख हो सकती है । सुख अभी है अभी क्षणभर पहले नहीं था । और अभी क्षणभर बाद फिर नहीं हो जाता । दुःख-अभी है; क्षणभर पहले नहीं था, क्षणभर बाद नहीं हो जाता है । जीवन अभी है, कल नहीं था, कल फ़िर नहीं हो जाता । जो चीजें बीच में होती हैं और दोनों छोरों पर नहीं होती हैं वे बीचमें केवल होने का धोखा ही दे पाती हैं क्योंकि जो दोनों ओर नहीं है वह बीच में भी नहीं हो सकता है । सिर्फ़ भासता है, दिखाई पड़ता है । appear होता है । जीवन की प्रत्येक चीज़ को इस कसौटी पर कसा जा सकता है । अर्जुन से कृष्ण यही कह रहे हैं कि तू कसके देख जो अतीत में नहीं था, जो भविष्य में

नहीं होगा उसके अभी होने के व्यामोहमें मत पड़ । वह अभी भी वस्तुतः नहीं है । वह अभी भी सिर्फ़ दिखाई पड़ रहा है । वह सिर्फ़ होने का धोखा दे रहा है । और तू धोखे से जाग भी न पाएगा कि वह नहीं हो जाएगा । तू उसपर ध्यान दे जो पहले भी था, जो अभी भी है और आगे भी होगा। हो सकता है वह तुझे दिखाई भी न पड़ रहा हो लेकिन वही है । तू उसकी ही तलाश कर, तू उसकी ही खोज कर । जीवन में सत्य की खोज असत्य की परख से शुरू होता है । To know the false as the false-मिथ्या को जानना मिथ्या की भांति। असत्य को पहचान लेना असत्य की भांति सत्य की खोज का आधार है । सत्य को खोजने का और कोई आधार भी नहीं हैं हमारे पास। हम कैसे खोजें, कि सत्य क्या है ? सत्य क्या है ? हम ऐसे ही शुरू कर सकते हैं कि असत्य क्या है ? कई बार बड़ी उलझन पैदा होती है । क्योंकि कहा जा सकता है कि जबतक हमें सत्य पता न हो तब तक हम कैसे जानें कि असत्य क्या है ? सत्य पता हो तबतक हम कैसे जानें कि असत्य क्या है ? जबतक हमें सत्यका पता न हो तो ही असत्य को जान सकेंगे । और सत्य हमें पता नहीं है । लेकिन इससे उल्टी बात भी कही जा सकती है । और सूफ़िस्ट उल्टी दलील भी देते रहे हैं । वो कहते हैं जबतक हमें यह ही पता नहीं हैं कि असत्य क्या है तो हम कैसे समझ लेंगे कि सत्य क्या है ? यह चक्रीय तर्क वैसा ही है जैसे अण्डे और मुर्गी का है। कौन पहले ? अण्डा पहले या मुर्गी पहले है ? कहें कि मुर्गी पहले हैं तो मुश्किल में पड़ जाते हैं । क्योंकि मुर्गी बिना अण्डे के नहीं हो सकेगी । कहें कि अण्डा पहले है तो उतनी ही कठिनाई खड़ी हो जाती है। क्योंकि अण्डा बिना मुर्गी के रखे रखा नहीं जा सकेगा। लेकिन कहीं से प्रारम्भ करना पड़ेगा । अन्यथा उस दुःष्चक्रमें उस vicious circle में कहीं कोई प्रारम्भ नहीं है । अगर ठीक से पहचानें तो मुर्गी और अण्डे दो नहीं हैं । इसलिए दुःष्चक्र पैदा होता है। अण्डा-हो रही मुर्गी है। मुर्गी बन रहा होता अण्डा है । वे दो नहीं हैं । वे एक ही process एक ही हिस्से हैं, एक ही लहर के दो भाग हैं । और इसलिए तो दुःष्चक्र पैदा होता है कि कौन पहले उनमें, कोई भी पहले नहीं है। एक ही साथ हैं। साइमल्टे-नियस हैं । युगपत् हैं । अण्डा मुर्गी है । मुर्गी अण्डा है । यह सत्य और असत्य का भी करीब-करीब सवाल ऐसा है । वह जिसको हम असत्य कहते

हैं उसका आधार भी सत्य है । क्योंकि वह असत्य भी सत्य होकर ही भासता है । वह भी दिखाई पड़ता है । एक रस्सी पड़ी है और अंधेरे में सांप दिखाई पड़ती है । सांप का दिखाई पड़ना बिल्कुल ही असत्य है । पास जाते हैं और पाते हैं कि सांप नहीं है । लेकिन पाते हैं कि रस्सी है । वह रस्सी सांप जैसी भास सकी । पर रस्सी थी भीतर । रस्सी का होना सत्य है । वह सांप एक क्षणको दिखाई पड़ा । फिर नहीं दिखाई पड़ा । वह असत् था । पर वह भी, उसके आधारमें भी, सत् था । Substance में, कहीं गहरे में, सत् था, उस सत्यके ही आभाससे, उस सत्यके ही प्रतिफलसे, वह असत्य भी भास सका है । लहरके पीछे भी सागर है । मृतके पीछे भी अमृत है । शरीरके पीछे भी आत्मा है । पदार्थके पीछे भी परमात्मा है । अगर पदार्थ भी भासता है, तो परमात्माकी ही प्रतिफलनासे, reflection से भासता है । अन्यथा भास नहीं सकता ।

आप एक नदी के किनारे खड़े हैं और नीचे आपका प्रतिबिम्ब बनता है । निश्चित ही वह प्रतिबिम्ब आप नहीं है । लेकिन वह प्रतिबिम्ब आपके बिना भी नहीं है । निश्चित ही वह प्रतिबिम्ब सत्य नहीं है । पानी पर बनी केवल छबि है । लेकिन फिर भी वह प्रतिबिम्ब, जहां से आ रहा है, वहाँ सत्य है । असत्य सत्य की ही झलक है क्षणभर को मिली । क्षणभर को सत्य ने जो आकृति ली अगर हमने उस आकृति को जोरसे पकड़ लिया तो हम असत्य को पकड़ लेते हैं । और अगर हमने उस आकृतिमें से उसको पहचान लिया जो निराकार, निर्गुण, उस क्षणभर आकृतिमें झलका था, तो हम सबको पकड़ लेते हैं । लेकिन जहाँ हम खडे हैं—वहां आकृतियों का जगत है । जहां हम खड़े हैं-वहां प्रतिफलन ही दिखाई पड़ते हैं । हमारी आँखें इस तरह झुकी हैं कि नदी के तट पर कौन खड़ा है वह दिखाई नहीं पड़ता । नदी के जल में जो प्रतिबिम्ब बन रहा है—वही दिखाई पड़ता है । हमें उससे ही शुरू करना पडेगा । हमें असत्य से ही शुरू करना पडेगा । हम स्वप्नमें हैं तो स्वप्न से ही शुरू करना पड़ेगा । अगर हम स्वप्न को ठीक से पहचान लें तो स्वप्न तिरोहित होता चला जाएगा । यह बड़े मजे की बात है । कभी प्रयोग करने जैसा अद्भुत । रोज रात को सोते समय स्मरण रख कर के सोयें । सोते सोते एक ही स्मरण रखे रहें-कि जब स्वप्न आये-तब मुझे होश बना रहे कि यह स्वप्न है । बहुत कठिन पडेगा । लेकिन सम्भव हो जाता है । नींद लगती जाय, लगती जाय—और आप स्मरण करते जायें, करते

जायें कि जैसे ही स्वप्न आये मैं जान पाऊँ कि यह स्वप्न है । थोडे ही दिन में यह सम्भव हो जाता है । दिनमें भी यह स्मृति प्रवेश कर जाती है । अचेतनमें उतर जाती है । और जैसे ही स्वप्न आता है-वैसे ही पता चलता है-यह स्वप्न है । लेकिन एक बहुत मजे की घटना है । जैसे ही पता चलता है-यह स्वप्न है-स्वप्न तत्काल टूट जाता है । तत्काल । इधर पता चला कि यह स्वप्न है-कि उधर स्वप्न टूटा और बिखरा । स्वप्न को स्वप्न की भाँति पहचान लेना उसकी हत्या कर देनी है । वह तभीतक जी सकता है, जबतक सत्य प्रतीत हो । उसके जीने का आधार उसके सत्य होने की प्रतीतिमें है । इस प्रयोग को जरूर करना ही चाहिये । इस प्रयोग के बाद कृष्ण का यह सब बहुत साफ समझमें आ जायगा कि वह इतना जोर देकर क्यों कह रहे हैं कि अर्जुन ! असत्य के बीच की भेदरेखा को जो पहचान लेता है वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है । स्वप्न से ही शुरू करें रात के । फिर बादमें दिन के स्वप्न को भी जाग के देखें । और वहां भी स्मरण रखें, कि जो है दो नहीं के बीचमें, वह स्वप्न है । और तब अचानक आप पायेंगे कि आप के भीतर कोई रूपांतरित होता चला जा रहा है । और जहां कल मन पकड़ लेने का होता है, आज वहां मुठ्ठी नहीं बनती । कल जहां मन रोक लेने का होता था किसी स्थिति को, आज वहां हँस के गुजर जाने का मन होता है । क्योंकि दोनों तरफ नहीं हैं उसे पकड़ना हवा को मुट्ठी में बांधने जैसा है । जितने जोरसे पकड़ो, उतनी ही बाहर हाथके हो जाती है । मत पकडो तो बनी रहती है । पकड़ो, तो खो जाती है । जैसे ही यह दिखाई पड़ गया, कि दो नहीं के बीचमें जो है, है मालूम पड़ता है, वह स्वप्न है । वैसे ही आपकी जिंदगी से असत्य की पकड़ गिरनी शुरू हो जायेगी । स्वप्न बिखरना शुरू हो जायेगा । तब जो शेष रह जाता है, the remaining—वह सत्य है । जिसको आप पूरी तरह जाग कर भी नहीं मिटा पाते, जिसको आप पूरी तरह स्मरण करके भी नहीं मिटा पाते, जो आपके बावजूद शेष रह जाता है; वही सत्य है । वह शाश्वत काल है । उसका कोई आदि नहीं, कोई अन्त नहीं । कहना चाहिए-वह timeless है । यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है ।

असत्य हमेशा time में होगा—समयमें होगा । क्योंकि जो कल नहीं था, आज है और कल नहीं हो जायेगा । उसके समय के तीन विभाजन हुए—अतीत, वर्तमान और भविष्य । लेकिन जो कल भी था, आज भी है

कल भी होगा, उसके तीन विभाजन नहीं हो सकते । उसका कौनसा अतीत है ? उसका कौनसा वर्तमान है ? उसका कौनसा भविष्य है ? वह सिर्फ है । इसलिए सत्य के साथ time-sense नहीं है । समय की कोई धारणा नहीं है, सत्य कालातीत है । समयके बाहर है । असत्य समय के भीतर है । जैसे मैंने कहा-आप नदी के तटपर खड़े हैं, और आपका प्रतिफलन, reflection नदी में बन रहा है । आप नदी के बाहर हो सकते हैं-लेकिन reflection सदा नदी के भीतर ही बन सकता है । पानी का माध्यम जरूरी है । कोई भी माध्यम-जो दर्पण का काम कर सके । कोई भी माध्यम-जो प्रतिफलन कर सके वह जरूरी है । आपके होने के लिए कोई प्रतिफलन करने वाले माध्यम की जरूरत नहीं है । लेकिन आपका चित्र बन सके उसके लिए प्रतिफलन के माध्यम की जरूरत है । Time, समय प्रतिफलन का माध्यम है । किनारे पर सत् खड़ा होता है । समय में असत् पैदा होता है । समय की धारा में, समय के दर्पण पर time-mirror पर जो प्रतिफलन बनता है, वह असत्य है । और समय में कोई भी चीज स्थिर नहीं हो सकती । जैसे पानी में कोई भी चीज स्थिर नहीं हो सकती । क्योंकि पानी अस्थिर है । इसलिए कितना ही स्थिर प्रतिबिम्ब हो, फिर भी काँपता रहेगा । पानी कम्पन है । ये जो काँपते हुए प्रतिबिम्ब हैं समय के दर्पण पर बने हुए कल थे, अभी हैं, कल नहीं होंगे-काल भी बड़ी बात है । बीते क्षणमें थे, नहीं थे, अगले क्षणमें नहीं हो जायेंगे । ऐसा जो क्षण क्षण बदल रहा है, जो क्षणिक है, वह असत्य है । जो क्षणके पार है, जो सदा है वही सत्य है । इसकी भेदरेखा को जो पहचान लेता है, कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञानको उपलब्ध हो जाता है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

अर्थ : इस न्यायके अनुसार, नाशरहित तो उसको जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत् व्याप्त है, क्योंकि इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई भी समर्थ नहीं है ।

आचार्यश्री :

जिसने सारे जगतको व्याप्त किया है, वह सूक्ष्मतम अविनाशी है । लेकिन जिससे यह सारा जगत व्याप्त हुआ है, वह वस्तु स्थूल है और विनाशवान है । इसे ऐसा समझिए—एक कमरा है, खाली है । कुछ भी

सामान नहीं है । वह जो कमरेका खालीपन है-वह पूराका पूरा व्याप्त किये हैं कमरे को । उचित तो यही होगा कि जब कमरा नहीं था तब भी वह खालीपन था । पीछे हमने दीवालें उठाके खालीपनको चारों तरफसे बंद किया । कमरा नहीं था, तब भी वह खालीपन था । कमरा नहीं होगा, तब भी वह खालीपन होगा । कमरा है, तब भी वह खालीपन है । कमरा बना है, मिटेगा, कभी नहीं था, कभी नहीं हो जायेगा । पर वो जो खालीपन है-वह जो स्पेस है (Space) है, वह जो अवकाश है, वह जो आकाश है वो था, है, रहेगा । उसके लिए 'था', 'है' इस तरहके शब्द उचित नहीं हैं । क्योंकि जो कभी भी 'नहीं' नहीं हुआ, उसके लिए 'है' कहना ठीक नहीं है । है, सिर्फ उसी चीजके लिए कहना ठीक है 'जो नहीं है' भी हो सकती है । वृक्ष है कहना ठीक है । आदमी है कहना ठीक है । परमात्मा है कहना ठीक नहीं है । परमात्माके साथ यह कहना कि परमात्मा है, पुनरुक्ति है, repetition है । परमात्मा का अर्थ यही है कि जो है उसको दोहरानेकी कोई जरूरत नहीं कि परमात्मा है । इसका मतलब यह हुआ कि जो है, वह है । कोई और मतलब नहीं हुआ । जो नहीं नहीं हो सकता, उसके लिए है कहना बिल्कुल बेईमानी है । इसलिए बुद्ध जैसे परम आस्तिकने 'परमात्मा है' वैसा शब्द कभी प्रयोग नहीं किया । नासमझ समझें कि नास्तिक है यह आदमी ! लेकिन बुद्धको लगा कि यह तो बड़ी ही भूल भरी बात कहना है-कि परमात्मा है । क्योंकि 'है' सिर्फ उसीके लिये कहना चाहिए 'जो नहीं है' भी हो जाता है । आदमी है ठीक है बात । उसपर 'है' हम लगा सकते हैं, उस पर आई हुई घटना है । कल खो जायेगी । 'है' इस पर आयी हुई घटना है-कल खो जायेगी । लेकिन परमात्मा 'है' यह कहना ठीक नहीं ।

God is कहना ठीक नहीं । क्योंकि God का तो मतलब ही Isness है । जो है ही उसके लिए 'है' कहना बड़ा कमजोर शब्द प्रयोग करना है । गलत शब्द उपयोग करना है । पुनरुक्ति है । खाली जगह है ही । कमरा नहीं था, तब भी थी । फिर कमरे में हम फर्निचर ले आए । फिर कमरे में हमने तस्वीरें लगा दीं । फिर कमरे में हम आकर बैठ गये । कमरा पूरा सज गया, भर गया । अब, इस कमरेमें दो चीजें हैं । एक तो वह खालीपन, जो सदासे था और एक यह भरापन जो सदासे नहीं था । लेकिन बड़े मजेकी बात है कि कमरेका खालीपन हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता । कमरेका भरापन दिखाई पड़ता है । कमरेमें वही दिखाई पड़ता है,

जो भरा हुआ है। वो नहीं दिखाई पड़ता जो खाली है। किसी भी कमरे में आकर प्रवेश करेंगे तो वही दिखाई पड़ता है जो वहां है। वह नहीं दिखाई पड़ता-जो वहाँ सदा था। वह नहीं दिखाई पड़ता है। वह अदृश्य भी है। अगर खालीपन का भी पता चलता है-तो कहना चाहिए कि वह भरेपनके reference में पता चलता है। यह कुर्सी रखी है, तो इसके आसपास खाली जगह मालूम पड़ती हैं। इस कुर्सीके आसपास खाली जगह मालूम पड़ती है। खाली जगहके बीचमें यह कुर्सी मालूम नहीं पड़ती। असलियत यही है कि खालीपनके बीचमें यह कुर्सी रखी है। कुर्सी हटाई जा सकती है। खालीपन हटाया नहीं जा सकता। भरा जा सकता है। हटाया नहीं जा सकता! आप एक कमरेसे कुर्सी बाहर निकाल ले सकते हैं। क्योंकि कुर्सी कमरेके अस्तित्वका हिस्सा नहीं है। लेकिन कमरेसे खालीपन नहीं निकाल सकते। ज्यादासे ज़्यादा कमरेमें सामान भरके खालीपनको दबा सकते हैं। अगर कमरेमें से सब चीजें निकाल ली जायँ तो आप कहेंगे कि यहाँ तो कुछ भी नहीं हैं। और अगर कमरेसे सब चीजें निकाल ली गयी है तो आपको सिर्फ कमरेकी दीवालें दिखाई पड़ेंगी। अगर दीवालें निकाल ली जाय तो आप कहेंगे यहाँ कमरा ही नहीं है लेकिन दीवालें कमरा नहीं है। दीवालोंके बीचमें जो खाली जगह है-वही कमरा है। अंग्रेजीका शब्द Room बहुत अच्छा है। Room का मतलब होता है खाली जगह। Room का मतलब ही होता है खाली जगह। पर, वह खाली जगह दिखाई भी नहीं पड़ती-ख्यालमें भी नहीं आती। क्योंकि खाली जगहका हमें स्मरण ही नहीं है। असलमें खाली जगह इतनी सदासे है कि इसे हमें देखनेकी जरूरत ही नहीं पड़ी। ठीक ऐसे ही यह जो विराट आकाश है, जो Space है अनन्त यह जो खाली जगह है, यह जो emptiness है फैली हुई अनन्त तक, जिसका कोई ओर-छोर नहीं है; जो कहीं शुरू नहीं होती और कहीं समाप्त नहीं होती! आप ध्यान रखें खाली चीज कभी नही शुरू और समाप्त हो सकती है। सिर्फ भरी चीज शुरू और समाप्त हो सकती है। खालीपन की कोई बिगिनिंग beginning और कोई end नहीं हो सकता। कमरे के खालीपन की कौन सी शुरुआत है और कौन सा अन्त है? हां दीवाल का होता है, सामान का होता है, कमरे का नहीं होता space की कोई सीमाएं नहीं हैं। आकाश का अर्थ ही है कि जिसकी कोई सीमा नही है। यह जो असीम फैला हुआ है, यह सत्य

है। और, इस असीम के बीच में बहुत कुछ उठता है। बनता है, निर्मित होता है, बिखरता है, वह असत्य है। वृक्ष बने, खालीपन थोड़ी देर के लिए हरा हुआ। फूल खिलें, खालीपन थोडी देर के लिए सुगंध से भरा। फिर फूल गिर गए। फिर वृक्ष गिर गया। खालीपन फिर अपनी जगह है। और जब वृक्ष उठा था और फूल खिले थे तब भी खालीपनमें कोई अन्तर नहीं पड़ा था, वह वैसा ही था। चीजें बनती हैं और मिटती हैं। जो बनता है और मिटता है वह स्थूल है वह दिखाई पड़ता है। जो नहीं बनता, नहीं मिटता, वह सूक्ष्म है वह अदृश्य है। सूक्ष्म कहना भी ठीक नहीं है। लेकिन मजबूरी में कृष्ण ने सूक्ष्म का प्रयोग किया, उचित नहीं है लेकिन मजबूरी है। कोई और उपाय नही है। असल में जब हम कहते हैं सूक्ष्म तो हमारा यह मतलब होता होता है स्थूल का ही कोई हिस्सा। जब हम कहते हैं "छोटा" तो मतलब होता है—बड़े का ही कोई हिस्सा। जब हम कहते हैं—बहुत सूक्ष्म, तो हमारा मतलब है कि बहुत ही कम स्थूल। बाकी मनुष्य की भाषा में सूक्ष्म भी स्थूल से ही जुड़ा है। हम कितना हो कहें सूक्ष्मातिसूक्ष्म तो भी स्थूल से ही जुड़ा है। आदमी की भाषा द्वन्द्व में बनी है। उसमें pairs हैं। उसमें दो दो चीजों के जोड़ हैं। लेकिन, कृष्ण जिसे सूक्ष्म कह रहे हैं वो स्थूल का कोई हिस्सा नहीं है। कृष्ण सूक्ष्म कह रहे हैं उसे जो स्थूल नहीं है। मजबूरी है लेकिन उसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। इसलिए निकटतम गलत शब्द जो हो सकता है वह सूक्ष्म है यानी कमसे कम गलत शब्द जो हो सकता है वह सूक्ष्म है। उसके लिए कोई शब्द नहीं है। कुछ भी हम कहें। हमने जितने शब्द बनाए हैं वे बड़े मजेदार हैं। उल्टे से उल्टा शब्द भी प्रयोग करें तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। वह उल्टे से उल्टा भी हमारे पुराने शब्द से ही जुड़ा होता है। अगर हम कहें कि वह असीम है तो भी हमें सीमा से ही वह शब्द बनाना पड़ता है। अब, यह बड़े मजे की बात है कि सीमा में असीम का कोई भाव नहीं होता, लेकिन असीम में सीमा का भाव होता है। हम कितनी ही कल्पना करें असीम की, हम ज्यादा से ज्यादा बहुत बड़ी सीमा की कल्पना करते हैं। हम कितना ही सोचें, तो हमारा मतलब यही होता है कि सीमा और आगे हटा दो, और आगे हटा दो और आगे हटा दो-लेकिन सीमा होगी ही नहीं यह हमारा विचार नहीं सोच पाता। वह inconceivable है, उसकी कोई चिन्तना नहीं हो सकती—असीम की। जब हम कहते हैं, कमरे में

खालीपन है, तो उसका मतलब हमारे मनमें यह होता है कि कमरे में खालीपन भरा है तो हम emptiness को भी वस्तु की तरह उपयोग करते हैं कि खालीपन भरा है। जैसे खालीपन कोई चीज़ है। जब कि खालीपन का मतलब ना भरा होना है। जहां कुछ भी नहीं है। लेकिन अगर हम कुछ भी नहीं का भी प्रयोग करें तो हम कुछ भी नहीं का भी वस्तु की तरह प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में शब्द हैं nothing-वह बना है nothing से। Nothing भी कहना हो, नहीं कुछ, तो भी thing वस्तु इसमें लानी पड़ती है। बिना वस्तु के हम सोच ही नहीं सकते। बिना स्थूल के हम सोच ही नहीं सकते। इसलिए कृष्ण के सूक्ष्म शब्द को आदमी की मजबूरी समझें-इसका मतलब, स्थूल का कोई अंश नहीं है, कोई बहुत-सूक्ष्म स्थूल नहीं है। सूक्ष्म का अर्थ है जो स्थूल नहीं ही है। और स्थूल क्या है ? जो दिखाई पड़ता है वह स्थूल है। जो स्पर्श में आता है वह स्थूल है। जो सुनाई पड़ता है वह स्थूल है। असल में जो इन्द्रियों की पकड़ में आता है वह स्थूल है। ऐसा भी नहीं है कि आप कल बड़ी दुर्बिन बना लें, खुद बीन बना लें, उसको पकड़ में आ जाए तो वो सूक्ष्म हो जायेगा। नहीं, जो भी पकड़ में आ जाए वह स्थूल है क्योंकि दुर्बिन कुछ नहीं करती। सिर्फ आपकी आँख की, इन्द्रिय की शक्ति बढ़ा करती है। आपकी आँख ही वैसे और बड़ी आँख हो जाती है, बड़े बड़े यंत्र भी हम विकसित कर लें तब भी जो पकड़ में आयेगा वह स्थूल ही होगा, क्योंकि सब यंत्र हमारी इन्द्रियों के extension हैं। वे हमारी इन्द्रियों के लिये और जोड़े गए हिस्से हैं। एक आदमी आँख पर चश्मा लगाके देख रहा है तो जो उसे आँख से नहीं दिखाई पड़ता था, वह अब दिखाई पड़ रहा है। लेकिन वह कोई सूक्ष्म चीज नहीं देख रहा है। वैज्ञानिक बड़ी दूर की चीजें देख रहे हैं। बड़े दूर का, लेकिन वह भी स्थूल है। जो भी दिखाई पड़ेगा; जो भी सुनाई पड़ेगा, जो भी स्पर्श में आ जायेगा, इन्द्रियों की सीमा के भीतर जो आ जायगा वह स्थूल है। सूक्ष्म का मतलब है जो मनुष्य की इन्द्रियों की सीमा में नहीं आता है, नहीं आ सकता है, नहीं लाया जा सकता है। असल में जो विचार भी जिसे नहीं पकड़ सकता है, वही सूक्ष्म है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कल तक वह परमाणु 'सूक्ष्मतम' था। अब परमाणु भी टूट गया। अब इलेक्ट्रोन हैं न्यूट्रोन है, प्रोट्रोन है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वह सर्वाधिक सूक्ष्म है क्योंकि अब वे दिखाई के बाहर होगए।

अब अनुमान से ही मालूम होता है। लेकिन जो अनुमान में भी आता है वह भी सूक्ष्म नहीं है। क्योंकि अनुमान भी मनुष्य के विचार का हिस्सा है। इसलिए वैज्ञानिक जिसे इलेक्ट्रोन कह रहे हैं वह भी कृष्ण का सूक्ष्म नहीं है। इलेक्ट्रोन के भी पार ठीक होगा कहना। Always the Beyond-जहां तक आप पहुँच जायेंगे तो उसके जो पार। वहाँ भी पहुँच जाएंगे। उसके जो पारThe transcendental है। वह जो सदा अतिक्रमण कर जाता है, वही सूक्ष्म है। पार होना ही जिसका गुण है। आप जहां तक पकड़ पाते हैं जो उसके पार सदा शेष रह जाता है। सदा ही शेष रह जाता हैं और रह जायगा। यहाँ ठीक से समझ लेना उचित होगा। हमारे पास दो शब्द हैं। अज्ञात unknown, अज्ञेय unknowable। साधारणतः हम जब सूक्ष्म को समझने जाते हैं तो ऐसा लगता है जो अज्ञात है unknown है। नहीं, कृष्ण उसे सूक्ष्म नही कह रहें है। क्योंकि जो unknown है वह known बन सकता है, जो अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जायगा, वह सूक्ष्म नहीं है। जिसके ज्ञात होने की अनन्त में भी कभी संभावना है वह सूक्ष्म नहीं है। स्थूल ही ज्ञात हो सकता है। आज न हो, कल हो जायगा। कल न हो, कभी हो जायगा लेकिन जो भी ज्ञात हो सकता है वह स्थूल है। जो ज्ञात हो ही नहीं सकता, जो सदा ही ज्ञान के बाहर छूट जाता है। जो सदा ही पकड़ के बाहर रह जाता है unknowable अज्ञेय है। नहीं, जाना नहीं जा सकता है जो. यही सूक्ष्म है इसलिए सूक्ष्म का मतलब ऐसा नहीं कि हमारे पास अच्छे उपकरण होंगे तब हम उन्हें जान लेंगे। लोग पूछते हैं कि क्या विज्ञान कभी परमात्मा को जान पाएगा ? जिसे भी विज्ञान जान लेगा वह परमात्मा नहीं होगा। क्योंकि परमात्मा से अर्थ इतना ही है जो जानने की पकड़ में नहीं आता। किसी दिन विज्ञान की प्रयोग-शाला अगर परमात्मा को पकड़ लेगी तो वह पदार्थ हो जाएगा। असल में जहांतक परमात्मा पकड़ में आता है, उसी का नाम पदार्थ है और जहां परमात्मा पकड़ में नहीं आता वहीं परमात्मा है। सूक्ष्म का, कृष्ण का अर्थ. ठीक से ख्याल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि जो सूक्ष्म है, वही सत्य है। जो पकड़ में आता है वह असत्य होगा। वह आज होगा कल नहीं होगा। जो पकड़ में नही आता वह है। एक कमरे में हम जायं। वहां फूल रखा है। फूल सुबह ठीक है, शाम मुरझा जायगा। उसी फूल के नीचे शंकरजी की पिण्डी रखी है। पत्थर रखा है। वह सुबह भी था, सांझ भी होगा। लेकिन

सौ वर्ष, दो सौ वर्ष, तीन सौ वर्ष, हजार वर्ष में बिखर जायगा । फूल एक दिन में बिखर गया, पत्थर था-हजारों वर्ष में बिखरा । इससे अन्तर नहीं पड़ता। कमरे में सिर्फ एक चीज है जो नही बिखरेगी। वो कमरे का कमरापन है roominess । वह जो खालीपन है वह भर नहीं बिखरेगा। वही सूक्ष्म है। वही सत्य है । बाकी कमरे में जो भी है वो सब बिखर जाएगा ।

मैंने एक Tao-ist चित्रकार की कहानी पढ़ी है। मैंने पढ़ा है-एक-ताओ गुरूने, अपने शिष्योंको कहा-कि तुम एक चित्र बना लाओ । उन्होंने पूछा कि कोई theme, कोई विषय दे दें । तो उसने कहा-कि तुम एक चित्र बना लाओ कि गाय घास चर रही है । चित्र बना के ले आए । सभी अच्छे अच्छे चित्र बना कर ले आए । लेकिन एक साधु जो चित्र बनाके लाया था उसमें जरा चौंकने वाली बात थी । क्योंकि वह कोरा कागज ही ले आया था । गुरूने पूछा-कि क्या बना नहीं पाए ? उसने कहा कि, नहीं,-चित्र बना है, देखें । फिर गुरूने उसके कागज की तरफ देखा, और शिष्यों ने भी कागजकी तरफ देखा फिर सबने उसकी तरफ देखा और पूछा कि, गाय कहाँ है ? तो उसने कहा कि, गाय घास चरके जा चुकी है । उन्होंने पूछा, घास कहाँ है ? उसने कहाः- घास गाय चर गयी है । तो उन्होंने पूछा, इसमें फिर क्या बचा ? तो उसने कहा जो गाय के पहले भी था; और घासके पहले भी था, और गायके बाद भी बचता है, और घास के बाद भी बचता है, वही मैं बना लाया हूँ ! लेकिन, वे सब कहने लगे-ये कोरा कागज है । पर उसने कहा कि यही बचता हैं । यह कोरापन । कृष्ण इस कोरेपनको सूक्ष्म कह रहे हैं-जो सब लहरोंके उठ जाने, गिर जाने पर बच जाता है और सदा बच जाता है । वही सत्य है ।

प्रश्न : आचार्यश्री, यह nothingness versus everything में, आप कभी आपके प्रवचनमें भागना और जागना, जो प्रयोग करते हैं-तो मैं उससे भागूँ या जागूँ ? इससे क्या क्या मतलब है ? इसमें acceptability में escape का प्रश्न नहीं आता ? और total evil का क्या ख्याल होता है ?

आचार्यश्री :

शून्य nothingness और सब कुछ everythingness एक ही चीजको कहनेके दो ढंग है। दो ओरसे । नकार से या विधेयसे । negative से या possitive से । जब हम कहते हैं-शून्य, तो यह हमारा चुनाव

है नकारका । जब हम कहते हैं पूर्ण तो यह हमारा चुनाव है विधेय का । लेकिन, मजे की बात है कि सिर्फ शून्य ही पूर्ण होता है और पूर्ण ही शून्य होता है । सिर्फ शून्य ही पूर्ण होता है क्योंकि शून्यके अपूर्ण होनेका कोई उपाय नहीं । आप अधूरा शून्य नहीं खींच सकते । आप शून्य के दो हिस्से नहीं कर सकते । आप शून्यमें से कितना ही निकाल लें, तो भी शून्यमें कुछ कम नहीं होता । आप शून्यमें कितना ही जोड़ दें-तो शून्य में कुछ बढ़ता नहीं । शून्यका मतलब ही यह है कि उससे बाहर-भीतर कुछ नहीं निकाला जा सकता है । पूर्ण का भी मतलब यही है कि जिसमें जोड़ने को कुछ नहीं बचा । क्योंकि पूर्ण के बाहर कुछ नहीं बच सकता । The total । अब उसके बाहर कुछ नहीं-जिसको जोड़े । जिसमें से कुछ निकालें तो कोई जगह नहीं बची-क्योंकि total के बाहर कोई जगह नहीं बच जाएगी, जिसमें निकाल लें । शून्यसे कुछ निकालें तो पीछे शून्य ही बचता है । शून्यमें कुछ जोड़े तो उतना ही शून्य रहता है । पूर्णसे कुछ निकालनेका उपाय नहीं । पूर्णमें कुछ जोड़ने का उपाय नहीं । क्योंकि पूर्णमें अगर कुछ जोड़ा जा सके; तो इसका मतलब है कि वह अपूर्ण था पहले, अब कुछ उसमें जोड़ा जा सकता है । शून्य और पूर्ण एक ही सत्यके दो नाम हैं । हमारे पास दो रास्ते हैं, जहां से हम नाम दे सकते हैं। या तो हम नकार का उपयोग करें या विधेयका उपयोग करें । सबकुछ और कुछ भी नहीं-एक ही बातको कहने के दो ढंग हैं । यह हमारा चुनाव है कि हम कैसे इसे कहें ? अगर यह ख्यालमें आ जाय-तो इस जगतमें उठे बहुत बड़े विवादका बुनियादी आधारशिला गिर जाती है । बुद्ध और शंकरके बीच कोई विवाद नहीं है । सिर्फ नकार और विधेय के शब्दों के प्रयोगका फासला और भिन्नता है । बुद्ध नकारात्मक शब्दोंका प्रयोग करते हैं । वे कहते हैं, "नहीं हैं" शून्य है, निर्वाण है; निर्वाणका मतलब दीये का बुझ जाना है जैसे दीया बुझ जाता है, बस, ऐसे ही सबकुछ नहीं हो जाता है । शंकर कहते हैं-सब है, ब्रह्म है, मोक्ष है, ज्ञान है । सब विषम शब्दों का प्रयोग करते हैं और बड़े मजेकी बात यह है-कि ये दोनों इशारे बिल्कुल एक चीजकी तरफ हैं। शंकर और बुद्ध से करीब दूसरा कोई आदमी खोजना मुश्किल है । लेकिन शंकर और बुद्धके करीब ही इस मुल्क का सबसे बड़ा विवाद खड़ा हुआ ।

जागें । समय के प्रति जागें । क्योंकि भागनेका मतलब ही यह है

कि हमने समग्रमें कुछ चुनाव कर लिया। इसे छोड़ेंगे, उसे पकड़ेंगे तभी भागा जा सकता है। भागनेका मतलब है कि कुछ हम छोड़ेंगे और कुछ हम पकड़ेंगे। अगर पूरेको जोड़ेंगे,-तो भागकर कहां जाएँगे ? अगर पूरे को अस्वीकार करें तो भागकर कहां जायेंगे। अगर त्याग पूर्ण हो, तो भागना नहीं हो सकता। भागेंगे कहाँ ? जहां भाग रहे हैं पूर्ण में वह भी त्यागा जा चुका है। मक्का भागेंगे ? मदोना भागेंगे ? काशी भागेंगे ? हरिद्वार भागेंगे ? अगर त्याग पूर्ण है-तो भागना असंभव है। अगर भोग भी पूर्ण है तो भागना असंभव है। भागने की कोई जरूरत नहीं है, सब अधूरेका खेल है। सब आधेका खेल है। सब तो half-hearted जो आधे हृदय से भोग रहे हैं-उनको पकड़ लेनेका उपाय है; जो आधे हृदय से त्याग रहे हैं-उनको छोड़ने का उपाय है। लेकिन जो पूरे हृदय से जी रहे हैं, उनको न भागने को कुछ है और न त्यागनेको कुछ है। उनको तो सिर्फ जानने को कुछ हैं। जागने को ही। प्रश्न भागने का नहीं है, प्रश्न जागने का है। प्रश्न देखने का है, दर्शनका है; प्रश्न गहरेमें झाँकनेका है। प्रश्न यह नहीं है कि पदार्थ से भाग जाओ। क्योंकि कहीं भी भागोगे-तो पदार्थ है। प्रश्न यह है कि-पदार्थमें गहरे झांको। ताकि परमात्मा दिखाई पड़े। तब भागनेकी कोई जरूरत न रह जाएगी। आकृतियों से जो भागेगा-वह जाएगा कहाँ ? दूसरी आकृतियोंके पास पहुँच जाएगा। स्थानों से भागेगा-दूसरे स्थानोंमें पहुँच जाएगा। मकानों से भागेगा, दूसरे मकानोंमें पहुँच जाएगा। लोगों से भागेगा दूसरे लोगोंमें पहुँच जाएगा। भाग कर जायेंगे कहाँ ? जहाँ भागेंगे-वहां संसार है। संसार से नहीं भागा जा सकता। हर जगह पहुँच कर पता चलेगा-संसार है। फिर वहाँ से भी भागो, फिर वहाँ से भी भागो। भागते रहो। अगर हम चांद तारोंकी रोशनीकी गति भी पा जायें, तो भी संसार से बाहर न भाग सकेंगे। अभी तक कोई चांद तारा नहीं भाग सका। अभी कोई रोशनीकी किरण नहीं भाग सकी संसार के बाहर। अनन्त, अनन्त यात्रा है रोशनी की किरणोंकी। लेकिन होगी संसारके भीतर ही। भाग नहीं सकते। असलमें जहाँ तक भाग सकते है-वहाँ तक तो संसार होगा ही। नहीं तो भागेंगे कैसे ? रास्ता कहाँ से पायेंगे ? जाग सकते हैं। ज्ञानी जागता है। अज्ञानी भागता है। हाँ, अज्ञानीके भागने के दो ढंग हैं। कभी वह स्त्रीकी तरफ भागता है, कभी स्त्रीकी तरफ से भागता है। कभी धनकी तरफ भागता है, कभी धन छोड़नेके लिए भागता है। कभी मुंह

करके भागता है, संसारकी तरफ; कभी पीठ करके भागता है। न मुँह करके कभी संसार को उपलब्ध कर पाता है, न पीठ करके कभी संसार को छोड़ पाता है। जो न पाया जा सकता है, और न छोड़ा जा सकता है-उसका नाम संसार है। सपने न पाये जा सकते हैं, न छोड़े जा सकते हैं। असत्य न पाया जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। असत्य के प्रति केवल जागा जा सकता है। one can be only aware-सपनेके प्रति सिर्फ जागा जा सकता है। जो आदमी सपना छोड़के भाग रहा है-वह काफी गहरे सपनेमें अभी है क्योंकि जिसको सपना छोड़कर भागना पड़ रहा है-उसे इतना तो पक्का है कि सपना, सपना नहीं है। भागने योग्य तो मालूम भी हो ही रहा है। इतना सच तो दिखाई पड़ेगा। कृष्ण अर्जुन को भागने से ही बचानेकी चेष्टामें संलग्न है। यह पूरी गीता भागने वालों के खिलाफ है। जो भागने वाले हैं वे उसी पागलपन को उल्टी दिशामें कर रहे हैं, जो पकड़ने वाले करते हैं। लेकिन, सिर्फ पागलपन उल्टा हो जाय, शीर्षासन करने लगे, तो इससे पागलपन नहीं रह जाता ऐसा नहीं है। कोई पागल शीर्षासन करके खड़ा हो जाय तो पागलपन मिट जाता है-ऐसा नहीं है। भोगी त्यागी हो जाते हैं। संसारी संन्यासी हो जाते हैं, उल्टे हो जाते हैं। तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। दिशा हैं। उल्टी दिखाई पड़ने लगती है। आदमी वही होता है। ढंग उल्टे हो जाते हैं, आदमी वही होता है। कृष्ण गीतामें एक बहुत ही अनूठी बात कह रहे हैं-और वह यह कह रहे हैं कि संसारी और संन्यासी विपरीत नहीं हैं, एक दूसरे से उल्टे नहीं हैं। संसार से भागकर कोई संन्यासी नहीं होता। संसारमें जागकर कोई संन्यासी होता है और जागना है तो यहीं जाग जाओ। कहीं भी भागो-इससे अंतर कोई नहीं पड़ता। जागने के लिए कोई खास जगह नहीं है। कहीं भी जागा जा सकता है। सपने मिटाने के लिए खास सपने देखने की जरूरत नहीं। कभी भी सपने में जागा जा सकता है। एक सपना देख रहा है आदमी-चोरका। एक आदमी सपना देख रहा है साधुका। क्या साधु वाले सपने से जागना आसान है-बजाय चोर वाले सपने से। दोनो सपने हैं। जागना एक-सा ही है, कोई अन्तर नहीं पड़ता। साधु होने के सपने से जागने में भी यही करना पड़ेगा-कि जानना पड़ेगा-कि यह सपना है। और चोरके सपने से भी जागने के लिए यही करना पड़ेगा-कि जानना पड़ेगा कि यह सपना है। सपने को सपने की भांति जानना ही

जागना है । और सपने को सत्यकी तरह जो मान लेता है उसके सामने दो विकल्प हैं–या तो सपने में डूबें–भोगें; या सपने से भागें और जागें । गीता भोग और त्याग–दोनों की अतियों को सपने के बीच मानेगी । जागना, पर जागने के लिए ही वे कह रहे हैं कि तू पहचान । यह तू पहजान, यह recognition यही तेरा जागरण बन जाने वाला है ।

आप यह तो कहेंगे न कि जागना भी भागने का शीर्षासन है । इतना तो प्रयत्न करना पड़ेगा !

नहीं, जागना भागने से जरा भी संबंधित नहीं है । जागना भागने से संबंधित ही नहीं है क्योंकि जागने में भागने का कोई भी तत्त्व नहीं है । विपरीत तत्त्व भी नहीं है । दूसरी तरफ भागना भी नहीं है । जागने का मतलब ही यह है कि जो है, उसे हम देखने को तत्पर होते हैं । धन है । इसके साथ भागने के दो काम हो सकते हैं । एक काम हो सकता है इसे छाती से लगा कर पकड़कर बैठ जायें । इसमें से एक पैसा न भाग जाय, इसका ध्यान रखे । दूसरा हो सकता है कि इससे ऐसे भागें कि लौट के न देखें। मुझे कोई कह रहा था कि विनोबाके सामने पैसा करो तो दूसरी ओर मुंह कर लेते हैं । पैसे से इतना डर ? तो पैसे में काफी ताकद मालूम पड़ती है । रामकृष्ण के पास अगर कोई पैसा रख दें तो छलांग लगाके उचकते कि कोई सांप बिच्छू आ गया ! पैसे में सांप बिच्छू ! तो सपना टूटा नहीं । सपने ने दूसरी शकल ली । पहले पैसा स्वर्ग मालूम पड़ता था अब नर्क मालूम पड़ने लगा । लेकिन पैसा कुछ है । यह जारी है । पैसा कुछ भी नहीं है । है तो लहर है, न भागने योग्य, न पकड़ने योग्य । जागना वहुत और बात है । उसमें पैसे से आंख बन्द करने की जरूरत नहीं; पैसे को छाती से पकड़ लेने की जरूरत नहीं । पैसा वहाँ है–आप यहाँ है । पैसा ने कभी आपको नहीं पकड़ा, और न पैसा आपसे कभी भागा है । आपकी पैसे ने कभी इतनी फिकर नहीं की–जितनी फिकर आप पैसे की कर रहे हैं । पैसा ज्यादा ज्ञानी मालूम पड़ता है । आप चले जाओ तो रोता नहीं । आप आ जाओ तो नहीं कहता कि स्वागत है, कि आइए। बड़ा अच्छा हुआ । जागने का अर्थ यह है, कहीं है, कहीं न कहीं है, किसी न किसी सपने में है । कोई आश्रम के सपने में होगा, कोई दुकानके सपने में होगा, जहाँ किसीने किसी सपने में है, वहां जायेंगें । इस सपने को पहचानें कि यह सत्य है । इस बात की जिज्ञासा, इस बात की खोज, जो मैं देख रहा हूं, वह क्या है ? नहीं,

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप कहने लगें-कि यह सपना है । अगर आपको कहना पडे कि यह सपना है तो जागना नहीं होगा । तब effort होगा । अगर आपको कोशिश करनी पड़ेगी कि यह सपना है । आपको अगर कोशीश करके अपने को समझाना पड़े कि यह सब सपना है, तब तो समझ लेना कि अभी आपको सपने का पता नहीं चला । सपनेका पता अगर चल जाय, तो यह कहने की कोई जरूरत न रह जाती कि सब सपना है । सब सपना है तो वही आदमी दोहराता है अपने मनमें, जिसे अभी सपने का कुछ भी पता नहीं ।

एक सूफी फकीर को मेरे पास लाये । वे मित्र, जो लाये थे, कहने लगें कि उन फकीर को सब जगह परमात्मा ही परमात्मा दिखाई पड़ता है । मैंने उनसे पूछा कि जगह भी दिखाई पड़ती है ? परमात्मा भी दिखाई पड़ता है ? दोनों दिखाई पड़ते हैं ? उन्होंने कहा–हमें कण कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है तो मैंने कहा, कण भी दिखाई पडता है ? कण में परमात्मा भी दिखाई पडता है ? ऐसा है ? उन्होंने कहा "आप कैसी बातें पूछते हैं–" । मैंने कहा कि अगर परमात्मा ही दिखाई पडता है तो अब कण नहीं दिखाई पडना चाहिए । और कण दिखाई पडता है तो परमात्मा आरोपित होगा,, इम्पोज्ड imposed होगा । कोशिश की गयी होगी । इसलिए जो आदमी कहता है–कण कण में परमात्मा दिखाई पडता है, उसे दो चीजें दिखाई पड़ रही हैं, कण भी दिखाई पड़ रहा है परमात्मा भी दिखाई पड़ रहा है । ये दोनों चीजे एक साथ दिखाई नहीं पड़ सकती । इनमें से एक चीज एकबार दिखाई पड़ सकती है । अगर परमात्मा दिखाई पड़ता है तो कण दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कण की कोई जगह नहीं रह जाती । जहाँ उसे देखें और अगर कण दिखाई पड़ता है तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जब तक कण दिखाई पड़ रहा है तब परमात्मा दिखाई पड़ना मुश्किल है । तो मैंने उनसे कहा, कोशिश की होगी; समझाया होगा अपनेको । लिखा है किताबों में कण कणमें परमात्मा है। "नहीं", उन्होंने कहा, मुझे वर्षों से दिखाई पडता है, तो मैंने कहा–और वर्षों के पहले कोशिश की होगी ! मैंने कहा–आप रुकें; मेरे पास रुक जायें । दो चार दिन अब देखने की कोशिश न करें । दूसरे दिन सुबह उन्होंने मुझसे कहा–कि आपने मुझे भारी नुकसान पहुँचाया । मेरी तीस साल की साधना खराब कर दी। क्योंकि मैंने रात से कोशिश नहीं की तो मुझे वृक्ष फिर वृक्ष दिखाई पडने लगे । अब वह मुझे परमात्मा दिखाई नहीं पडता । तो मैंने कहा-"जिसको तीस साल देखके भी दो

चार घन्टे देखने की कोशिश न की जाय और खो जाता हो—तो आप वृक्षों के ऊपर अपना एक सपना आरोपित कर रहे हैं। उसका परमात्मा से कोई लेना देना नहीं हैं। कह रहे हैं कि वृक्ष में परमात्मा है; समझाया जाय तो दिखाई पड़ने लगेगा। लेकिन, यह वह परमात्मा नहीं जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं। आपको परमात्मा थोपना नहीं हैं जगत पर। आपको तो जगत के प्रति ही जाग जाना है। जागने से जगत खो जाता है और परमात्मा शेष रह जाता है। आपको सपने को समझाना नहीं हैं अपने को कि, यह झूठ है, यह झूठ है। नहीं, सपने को देख लेना है ठीक से, कि क्या है? और जैसे ही सपने को देख लिया जाता है कि क्या है—कि आप अचानक पाते हैं सपना टूट गया और नहीं हैं। फिर जो शेष रह जाता है वही सत्य है। प्रयास तो हमें असत्य के लिए करने पडते हैं। सत्य के लिए नहीं करने पडते हैं—efforts तो असत्य के लिये करना पडता है, सत्य के लिये नही करना पडता है। क्योंकि जो सत्य मनुष्य के प्रयास से मिलता होगा वह सत्य नहीं हो सकता। जो सत्य मनुष्य के प्रयास के बिना ही मौजूद है—वही सत्य है। सत्य आपको निर्मित नहीं करना है। वह आपका construction नहीं है कि आप उसको निर्माण करेंगे। सत्य तो है ही। कृपा करके असत्य भर निर्माण न करें, तो जो है—वह दिखाई पड़ जायगा। मैं एक वृक्ष की शाखा को अपने हाथ से खींच लेता हूं। फिर मैं राह चलते, आपसे पूछता हूँ कि इस वृक्ष की शाखा को मैंने इसकी जगत से नीचे खींच लिया है। अब मैं इसे इसकी जगह वापिस पहुँचाना चाहता हूँ तो क्या करूँ? आप क्या कहेंगे मुझसे कि कुछ करिए। आप कहेंगे, कृपा करके खींचिए भर मत। छोड़ दीजिए। शाखा अपनी जगह पहुँच जायगी। शाखा अपनी जगह थी ही। आपकी कृपा से ही अपनी जगह से हट गयी। परमात्मा में पहुँचने के लिए मनुष्य को किसी effort और प्रयास की जरूरत नहीं। परमात्मा को खोने के लिए उसने जो प्रयास किया है कृपा करके उतना प्रयास भर न करें। अपनी जगह पहुँच जायगा। स्वप्न हमारे निर्माण हैं, सत्य हमारा निर्माण नहीं है। इसलिए बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, और लोगो ने बुद्ध से पूछा कि 'तुम्हे क्या मिला''? तो बुद्ध ने कहा ''मुझे कुछ मिला नहीं, सिर्फ मैंने कुछ खोया है। तब तो वे बहुत हैरान हो गए। उन्होंने कहा—हम तो सोचते थे कि आपको कुछ मिला है! बुद्ध ने कहा मिला कुछ भी नहीं। जो था ही उसे मैंने जाना है। हां खोया जरूर कुछ। जो जो मैंने बनाया था वह मुझे सब खो देना पडा। अज्ञान मैंने खोया

और ज्ञान मैंने पाया नहीं, क्योंकि ज्ञान था ही। जिस अज्ञानको मैं जोरसे पकड़े था उसकी वजह से दिखाई नहीं पड़ रहा था। खोया जरूर, पाया कुछ भी नहीं। पाया वही जो पाया ही हुआ था। जो सदा से मिला ही हुआ था। ठीकसे समझें तो सिर्फ जाग कर देखने की जरुरत है आंख खोल के। प्रज्ञा को पूरी तरह जगा के, चेतना को पूरे होश से अप्रमादमें लाकर। देखने भर की जरूरत है कि क्या है? और जैसे ही हम देखते हैं क्या है उसमें जो नहीं है वह गिर जाता हैं जो है वह शेष रह जाता है।

अन्तवत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अविनाशोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥१८॥

अर्थ : और इस नाशरहित अप्रमेय नित्य-स्वरूप जीवात्मा के यह सब शरीर नाशवान कहे गए हैं। इसलिए, हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर

आचार्यश्री :

अर्जुन को युद्ध बड़ा सत्य मालूम पड़ रहा है, देह बहुत सत्य मालूम पड़ रही है। मृत्यु बहुत सत्य मालूम पड़ रही है। उसकी अड़चन स्वाभाविक है। उसकी अड़चन हमारी सबकी अड़चन है। जो हमें सत्य मालूम पड़ता है वही उसे सत्य मालूम पड़ रहा है! कृष्ण उसे बड़ी दूसरी दुनिया की बातें कह रहे हैं। वे कह रहे हैं—कि यह देख, यह शरीर-धारी लोग, यह दिखाई पड़ने वाला सारा जाल, यह स्वप्न-तू इसकी फिकर मत कर, और लड़। कृष्ण का लड़ने के लिए यह आह्वान तथाकथित धार्मिक लोगों को so called religious men सदा ही कष्ट का कारण रहा है। समझ के बाहर रहा है। क्योंकि एक तरफ समझाने वाले लोग हैं जो कहते हैं कि चींटी पर पैर पड़ जाय तो बचाना। अहिंसा! पानी छान कर पीना। दूसरी तरफ यह कृष्ण है जो कह रहा है कि तू लड़। क्योंकि यहां न कोई मरता है न कोई मारा जाता है। यह सब देख, स्वप्न है। अर्जुन साधारणतः ठीक कहता मालूम पड़ता है। गांधी ने चाहा होता कि अर्जुन की बात कृष्ण मान लेते। अहिंसावादियों ने चाहा होता कि कृष्ण की बात न चलती। अर्जुन की चल जाती। लेकिन कृष्ण बड़ी अजीब बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जो स्वप्न है उसके लिए तू दुःखी हो रहा है। जो नहीं है उसके लिए तू पीडित और परेशान हो रहा है। साधारण नीति के बहुत पार चली गयी बात। इसलिये जब पहली बार गीता के अनुवाद पश्चिममें

पहुँचे तो पश्चिम के नीतिवादियों की छातियां काँप गयीं । भरोसा न हुआ कि कृष्ण और ऐसी बात कहेंगे ! जिन्होंने सिर्फ़ पुरानी बाइबिल के ten commandments पढ़े थे धर्म के नाम पर । जिन्होंने पढ़ा था, चोरी मत कर । जिन्होंने पढ़ा था, असत्य मत बोल । जिन्होंने पढ़ा था, किसी को दुःख मत पहुँचा । उनके प्राण काँप गए । बड़ा shaking था कि कृष्ण कहते हैं कि यह सब स्वप्न है । तू लड़ । तो पश्चिम जैसे नीतिवादों को लगा कि गीता जैसी किताब नैतिक नहीं ! या तो अनैतिक है, या तो अति-नैतिक है, या तो immoral है या एमोरल है (amoral है)–कम से कम moral तो नहीं है । यह क्या बात है ? और ऐसा पश्चिम में ही लगा हो ऐसा नहीं है। जैन विचारकों ने कृष्ण को नरकमें डाल दिया। जैन चिंतकों को यह अनुभव हुआ कि यह आदमी क्या कह रहा है ? मारने की खुली छूट । अगर अर्जुर का बस चलता तो महाभारत शायद नहीं होता । कृष्ण ने ही करवा दिया तो अहिंसा की धारा इस मुल्कमें भी थी । उसने कृष्ण को नरक में डालने की जरुरत एहसास की । इस आदमी को नरक में डाल ही देना चाहिए । यह बड़ा मुद्दा हैं और बड़े विचार का । इसमें ध्यान रखना जरुरी है कि नीति धर्म नहीं है । नीति बहुत कामचलाउ व्यवस्था है । नीति बिल्कुल सामाजिक घटना है । नीति स्वप्न के बीच व्यवस्था है। स्वप्नमें भी तो, रास्तों पर चलना हो, तो नियम बनाने पड़ेंगे । स्वप्नमें भी जीना होतो व्यवस्था, डिसिप्लिन, discipline शिस्त, अनुशासन बनाना पडेगा । नीत धर्म नहीं है । नीति बिल्कुल सामाजिक व्यवस्था है । इसलिए नीति रोज बदल सकती है । समाज बदलेगा और नीति बदलेगी । कल जो ठीक था वह आज गलत हो जाएगा । आज जो ठीक नहीं है वह कल सही हो जायेगा । नीति भी असत्यका हिस्सा है । इसका यह मतलब नहीं कि धर्म अनीति है । जब नीति तक असत्य का हिस्सा है, तो अनीति तो असत्य का हिस्सा होगी ही । धर्म नीति और अनीति को पार करता है असल में धर्म संसार को पार करता है । और इसलिये कृष्ण की बात जिस तल से कही जा रही है, उस तल से बहुत मुश्किल से समझी जा सकी है । जैनों ने नरक में डाल दिया । वह एक उपाय था उनसे छूटकारा पाने का । गांधी ने पूरी गीता को रूपक (metaphor) मान लिया कि यह हुई नहीं है घटना कभी, क्योंकि कृष्ण कहाँ युद्ध करवा सकते हैं ? यह किसी असली युद्ध की बात नहीं है । यह तो शुभ अशुभ के बीच जो युद्ध चलता

है उसकी प्रतीक-कथा है । सिम्बोलिक है । यह दूसरी तरकीब थी, ज्यादा भली । लेकिन मतलब वही छुटकारा पाने का । मतलब यह है कि यह घटना, कभी युद्ध, कृष्ण कैसे करवा सकते हैं ? कृष्ण कैसे कह सकते हैं कि युद्ध करो । नहीं, कृष्ण तो यह कह ही नहीं सकते । इसलिए अब दूसरा उपाय है–होशियारी से कृष्ण से बच जाने का और वह यह है कि कहो कि metaphor है, सिम्बोलिक है । एक कहानी है, प्रतीक–कथा है । यह घटना कभी घटी नहीं । ऐसा कोई युद्ध कहीं हुआ नहीं जिसमें युद्ध करवाया गया हो । यह सब तो प्रतीक पुरुष हैं । यह अर्जुन और यह दुर्योधन और ये सब व्यक्ति नहीं है । यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है । यह तो सिर्फ एक पेरेबल parable है । एक प्रतीक कथा है–जिसमें शुभ और अशुभ की लड़ाई हो रही है । और अशुभके खिलाफ लड़ने के लिए कृष्ण कह रहे हैं। अब कृष्ण को एकदम बिल्कुल विकृत करना है । कृष्ण अशुभ के खिलाफ लड़ने को नहीं कह रहे हैं । अगर कृष्ण को ठीक समझें तो वह कह रहे हैं कि शुभ और अशुभ एक ही स्वप्न के हिस्से हैं । हिंसा और अहिंसा एक ही स्वप्न के हिस्से हैं । कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि हिंसा ठीक है। कृष्ण इतना ही कह रहे हैं कि हिंसा और अहिंसा, अच्छे और बुरे आदमी के स्वप्न हैं । स्वप्न ही हैं । और पूरे स्वप्न को स्वप्न की भांति जो जानता है, वह सत्य को उपलब्ध होता है । नीति का अतिक्रमण करती है यह बात । अनैतिक नहीं है । अनीति का भी अतिक्रमण करती है यही बात । इन अर्थों में कृष्ण का संदेश बहुत कठिन हो जाता है समझना । चुनाव आसान पड़ता है । यह बुरा है, यह ठीक है । लेकिन ठीक और बुरा दोनों ही स्वप्न हैं । यहाँ हमारे पैर डगमगा जाते हैं । लेकिन जो यहां पैर को स्थिर रख सके वही गीता में आगे प्रवेश कर सकेगा । इसलिए इस बातको बिल्कुल ठीक से समझ लेना कि कृष्ण न हिंसक हैं । न अहिंसक हैं । क्योंकि हिंसक की मान्यता है कि मैं दूसरे को मार डालता हूँ । और अहिंसक की मान्यता है कि मैं दूसरे को बचा रहा हूँ । अब कृष्ण कहते हैं कि जो न मारा जा सकता है वह बचाया भी नहीं जा सकता है । न तुम बचा सकते हो, न तुम मार सकते हो । जो है, वह है और नहीं है, वो नहीं ही है । तुम दोनों एक दूसरे से विपरीत स्वप्न देख रहे हो । एक आदमी किसी की छाती में छूरा भोक देता है तो सोचता है मिटा डाला इसे और दूसरा आदमी उसकी छाती से छूरा निकाल के मरहम पट्टी करता है और सोचता है बचा

लिया इसे इन दोनों ने सपने देखे, विपरीत। एक बुरे आदमी का सपना, एक अच्छे आदमी का सपना और हम चाहेंगे कि अगर सपना ही देखना है तो अधिक लोग अच्छे आदमी का सपना देखें। लेकिन, कृष्ण यह कह रहे हैं कि दोनों सपने हैं। और एक और तल है देखने का, जहां बचाने वाला और मारनेवाला एक-सी ही भूल कर रहा है। वह भूल यही है कि जो है, उसे या तो मिटाया जा सकता है या बचाया जा सकता है। कृष्ण कह रहे हैं जो नहीं है वह नहीं है। जो है वह है। वह यह नहीं कह रहे कि बुरे आदमी का सपना देखें। वह यह कह रहे हैं कि दोनों ही सपने हैं और अगर देखना ही है, तो पूरे सपने को देखें ताकि जाग जायें। अगर देखना ही है तो बुरे-अच्छे आदमी के स्वप्नों में चुनाव न करें, पूरे सपने को ही देखें और जाग जायँ। यह जागरणकी awareness की जो प्रक्रिया, कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, वह अर्जुन की कैसे समझमें आएगी ? बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अर्जुन बड़ी नीतिवादी बातें कर रहा है और वह नैतिक सपना देखने को बड़ा उत्सुक है। वह अनैतिक सपने से ऊबा हुआ मालूम पड़ता है। अब वह नैतिक स्वप्न देखने को उत्सुक है और कृष्ण कहते हैं-स्वप्न में भी चुनाव कर रहा है। पूरे स्वप्न के प्रति ही जाग जाना है।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

अर्थ : और जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है वे दोनों ही नहीं जानते हैं, क्योंकि यह आत्मा न मरता है और न मारा ही जाता है।

आचार्यश्री :

जो है, वह न मरता है, और न मारा जाता है। और जो है, हमारे भीतर उसका नाम आत्मा है। और जो है हमारे बाहर उसका नाम परमात्मा है। जो मारा जाता है, और जो मार सकता है, या जो अनुभव करता है कि मारा गया; हमारे भीतर उसका नाम शरीर है, हमारे बाहर उसका नाम जगत है। जो अमर्त्य है, जो immortal है वही चेतना है। और मर्त्य है, वही जड़ है। साथ ही, जो मर्त्य है, वही लहर है। असत्य है। और जो अमर्त्य है वही सागर है, सत्य है। अर्जुन के मनमें

यही चिंता, दुविधा और पीड़ा है कि मैं कैसे-कैसे मारने में संलग्न हो जाऊं इससे तो बेहतर है मैं ही मर जाऊं। ये दोनों बातें एकसाथ ही होंगी। जो दूसरे को सोच सकता है मरने की भाषामें वह अपनेको भी मरने की भाषामें सोच सकता है। जो सोच सकता है कि मृत्यु संभव है; वह स्वभावतः दुःखी हो जाएगा। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मृत्यु एकमात्र असंभावना है। The only impossibility, मृत्यु हो ही नहीं सकती। मृत्यु की असंभावना है। लेकिन जिंदगी जहाँ हम जीते हैं वहाँ तो मृत्युसे ज्यादा निश्चित और कोई संभावना नहीं है! वहाँ सब चीजें असंभव हो सकती है। है। मृत्यु भर सुनिश्चित रूपसे संभव है। एक बात तय है-वह है मृत्यु। और सब बातें तय नहीं है। और सब बदलाहट हो सकती है। कोई दुःखी होगा, कोई सुखी होगा। कोई स्वस्थ होगा, कोई बीमार होगा। कोई सफल होगा, कोई असफल होगा। कोई दीन होगा, कोई सम्राट होगा और सब होगा और सब विकल्प खुला है। एक विकल्प बंद है। वह मृत्युका विकल्प है। वह होगा ही। वह सम्राट भी वहां पहुँचेगा, भिखारी भी वहां पहुँचेगा। सफल भी, असफल भी, स्वस्थ भी, बीमार भी। सब वहां पहुँच जाएगा। एक बात जिस जीवनमें हम खड़े हैं वहां तय है—वह मृत्यु है। और कृष्ण बिल्कुल उल्टी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि एक बात भर सुनिश्चित है कि मृत्यु असंभावना है। न कभी कोई मरा और न कभी कोइ मर सकता है। मृत्यु अकेला भ्रम है। शायद, इस मृत्युके आसपास ही हमारे जीवनके सारे कोण निर्मित होते हैं। जो देखता है कि मृत्यु सत्य है, उसके जीवनमें शरीरसे ज्यादाका अनुभव नहीं है। यह बड़े मजेकी बात है कि आपको मृत्युका कोई भी अनुभव नहीं है। आपने दूसरोंको मरते देखा है-अपनेको मरते कभी नहीं देखा। समझें, कि एक व्यक्तिको हम विकसित करें, जिसने मृत्यु न देखी हो। किसीको मरते न देखा हो। कल्पना कर लें। एक व्यक्तिको हम इस तरह बड़ा करते हैं-जिसने मृत्यु नहीं देखी है। क्या यह आदमी कभी भी सोच पाएगा कि मैं मर जाऊंगा ? क्या इसके मनमें कभी भी यह कल्पना भी उठ सकती है कि मैं मर जाऊँगा ? असंभव है। मृत्यु inference है—अनुमान है दूसरेको मरते देखकर। और मज़ा यह है कि जब दूसरा मरता है, तो आप मृत्यु नहीं देख रहे हैं। क्योंकि मृत्युकी घटना आपके लिए सिर्फ इतनी ही है कि वह कलतक बोलता था, अब नहीं बोलता। कलतक चलता था, अब नहीं चलता है।

आप चलते हुए को न चलतेकी अवस्थामें गया हुआ देख रहे हैं, बोलते हुए को न बोलते की अवस्थामें देख रहे हैं, धड़कते हृदयको न धड़कते हृदय की अवस्थामें देख रहे हैं। लेकिन क्या इतनेसे काफी है कि आप कहें कि जो भीतर था वह मर गया? क्या इतना पर्याप्त है? क्या इतना काफी है? मृत्युकी निष्पत्ति लेनेको क्या यह काफी हो गया है? यह काफी नहीं है?

दक्षिणमें एक योगी थे, कुछ वर्षों पहले, ब्रह्मयोगी। उन्होंने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटीमें, और कलकता और रंगून यूनिवर्सिटीमें, तीन जगह मरनेका प्रयोग करके दिखाया। बहुत कीमती प्रयोग था। वे १० मिनिटके लिए मर जाते थे। जब आक्सफोर्ड युनिवर्सिटीमें उनका प्रयोग हुआ, तो डाक्टर लोग मौजूद थे। और उन्होंने कहा कि इन १० मिनिटमें आप मेरी जांच पड़ताल करके लिख दें सर्टिफिकेट, कि यह आदमी मर गया कि जिन्दा है। फिर उनकी सांस खो गयी। फिर उनकी नाड़ी बंद हो गयी फिर हृदयने धड़कना बंद कर दिया। फिर खून की चाल सब शांत हो गयी। और १० डाक्टरों ने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के मेडिकल कॉलेजके, सर्टिफिकेट लिखा कि यह आदमी मर गया है। और मरनेके सारे symptoms इस आदमीने पूरे कर दिए हैं और दस आदमियों ने दस्तखत किया। और वह ब्रह्मयोगी १० मिनिट के बाद वापिस जिन्दा हो गया-सांस फिर चलने लगी, हृदय फिर धड़कने लगा, खून फिर बहने लगा, नाड़ी फिर वापिस लौट आयी। और उन्होंने कहा—फिर सर्टिफिकेट लिखें-कि यह आदमी, इस आदमीके बाबत क्या ख्याल है? उन डॉक्टरों ने कहा, हम बड़ी मुश्किलमें पड़ गए। आप हम पर कोई अदालतमें मुकदमा तो न चलायेंगे? मेडिकल साइंस जो कह सकती थी, वह हमने कह दिया। तो ब्रह्मयोगी ने कहा—मुझे यह भी लिखके दें कि अबतक जितने लोगों को आपने मरनेके सर्टिफिकेट दिए है, वे संदिग्ध हो गए हैं।

असलमें जिसे हम मृत्यु कह रहे हैं, वह जीवनका शरीरसे सरक जाना है। जैसे कोई दिया अपनी किरणों को सिकोड़ ले वापिस। ऐसे जीवनका फैलाव वापिस सिकुड़ जाता है। बीजमें वापिस लौट जाता है। फिर नई यात्रा पर निकल जाता है। लेकिन बाहरसे सिकुड़ने को हम मृत्यु समझ लेते हैं। बटन दबा दी हमने। बिज़लीका बल्ब जलता था, किरणें समाप्त हो

गयीं, बल्बसे अंधकार झरने लगा। क्या बिजली मर गयी? सिर्फ अभिव्यक्ति खो गयी। सिर्फ manifestation बंद हो गया। फिर बटन दबाते हैं। फिर किरणें-बिज़ली-वापिस बहने लगी। क्या बिजली पुनः जीवित हो गयी? क्योंकि जो मरी नहीं थी, उसको पुनः जीवित कहने का कोई अर्थ नहीं है। बिजली पूरे समय वहीं थी। सिर्फ, अभिव्यक्ति खो गयी थी जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह प्रकट का फिर पुनः अप्रकट हो जाना है। जिसे हम जन्म कहते हैं-वो अप्रकट का पुनः प्रकट हो जाना है। कृष्ण कहते हैं-नहीं शरीर को मारनेसे आत्मा मरती है, नहीं शरीर को बचाने से आत्मा बचती है। आत्मा न मरती है, न बचती है। असलमें, जो मरने और बचने के पार है, वही आत्मा है। वही अस्तित्व है।

क्रमशः।

जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई द्वारा प्रकाशित

आचार्य श्रीरजनीश का साहित्य

हिंदी साहित्य	मू. रुपया
१ प्रभुकी पगडंडियाँ	४-००
२ अमृतकण *	०-४०
३ अहिंसादर्शन *	०-५०
४ सिंहनाद	१-५०
५ कुछ ज्योतिर्मय क्षण *	१-००
६ नये मनुष्यके जन्मकी दिशा *	०-७५
७ अज्ञात की ओर *	२-००
८ नये संकेत *	२-००
९ संभोग से समाधि की ओर *	३-५०

हिंदी साहित्य	मू. रुपया
१० नई दिशा नई बात	०-३०
११ क्रांतिबीज *	४-००
१२ शांति की खोज	२-००
१३ अन्तर्यात्रा *	३-५०
१४ क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०-३०
१५ अस्वीकृति में उठा हाथ	५-००
१६ बिखरे फूल	०-३५
१७ संस्कृति के निर्माण में सहयोग	०-३०
१८ सत्यका सागर शून्य की नाव	३-००
१९ समाजशद से सावधान	३-५०
२० पूर्वका धर्म पश्चिम का विज्ञान	०-५०
२१ सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण *	१-५०
२२ मैं कौन हूँ	२-००
२३ प्रेम के फूल	५-००
२४ प्रेम और विवाह	१-००
१ प्रेमाचे पंख	०-७५
२ साधनापथ	३-००
३ क्रांतिबीज	२-५०

सामयिक प्रकाशन, वार्षिक मूल्य

१ ज्योतिशिखा (त्रैमासिक)	५-००
२ युक्रांद (मासिक)	१२-००

मराठी साहित्य	मू. रुपया
४ अहिंसादर्शन	०-५०
५ सिंहनाद	२-००
६ अमृतकण	०-५०
७ पथ प्रदीप *	८-००
८ समाजवाद पासून सावध रहा	०-५०

English Literature

1 Towards the Unknown	1-50
2 Rajneesh A glimpse	1-25
3 Beyond & Beyond	2-00
4 Seeds of Revolutionary Thoughts	4-50
5 Earthen Lamps	4-50
6 Path of self-Realiza-tion	4-00
7 Philosophy of non-Violence	0-80
8 Meditation A new Dimension	2-00
9 Who am I ?	3-00
10 Flight of the Alone to the Alone	2-50
11 Wings of Love & Random Thoughts	3-50
12 Mystic of Feeling	20-00

ગુજરાતી સાહિત્ય

* આવાં ચિહ્નવાળાં સઘળાં તેમજ અન્ય પ્રકાશનો પણ, ગુજરાતીમાં ભાષાંતર થયેલ હોવાથી સુલભ છે.

पुस्तकें मिलने का पता :

जीवन जागृति केन्द्र

खाड़िया चारराास्ता, अहमदावाद-१ फोन नं० २४०८३

एम्पायर बिल्डिग, कमरा ५३, १ ला मंजला. १४६, डॉ, डी. एन. रोड, **बम्बई-१.**

फोन नं० २६४५३०